(उच्चकोटि का मौलिक ऐतिहासिक नाटक)

लेखक—

आचार्य श्रीचतुरसेन शास्त्री

अन्तस्तल, हृदय की परख, हृदय की प्यास, ख़वास का व्याह, रजकण, स्त्रियों का ओज, राजपूत बच्चे, मेघनाद, आत्मदाह, अजीतसिंह, अमर अभिलाषा, अक्षत, उत्सर्ग, आरोग्य-शास्त्र, ब्रह्मचर्य-साधन, अमीरों के रोग, पुत्र, कन्यादर्पण, अमर राठौर आदि आदि गद्य काव्य, उपन्यास, नाटक, कहानी संग्रह तथा धर्म, समाज, राजनीति एवं स्वास्थ्य विज्ञान पर लगभग पचास ग्रन्थों के निर्माता

प्रकाशक—

एन० एम० भटनागर एण्ड ब्रदर्स,

उदयपुर ।

प्रथम संस्करण } सन् १९३९ { अजिल्दका मूल्य १)
सजिल्दका ,, १॥)

दो शब्द

यह नाटक मैट्रिक व इण्टरमीडियेट के विद्यार्थियों के लिए लिखा गया है, इसलिए इसमें नाट्य-कला की बारीकियों का उतना ख़याल नहीं रखा गया जितना कि विद्यार्थियों की ज्ञानवृद्धि का। नाटकीय जटिलता तथा प्रवचन की कृत्रिम शैली भी नहीं काम में ली गई है। भावगाम्भीर्य भी वहीं तक है जहाँ तक मैट्रिक व इण्टरमीडियेट की योग्यता के विद्यार्थी समझ पा सकें। यथासाध्य चेष्टा ऐसी की गई है कि जिससे वीरवर राणा राजसिंह के सम्बन्ध में अधिक से अधिक जानकारी विद्यार्थियों को हो जाय।

यद्यपि नाटक की भित्ती इतिहास है, और उसमें नाटकीय रंग भरने के लिए कल्पना काम में लाई गई है। परन्तु उस कल्पना में सबसे बड़ी चेष्टा यह की गई है कि राजपूती उत्सर्ग और त्याग की तत्कालीन एक रूपरेखा विद्यार्थीगण के मन पर अङ्कित हो सके। पुस्तक में पात्र लगभग सभी ऐतिहासिक हैं।

संजीवन इन्स्टीट्यूट
शाहदरा–दिल्ली
ता० ८–१२–३८

श्रीचतुरसेन वैद्य

राजसिंह

महाराणा राजसिंह राजपूताना के प्रकाशमान नक्षत्र थे। उन्होंने समस्त राजपूत शक्ति के निस्तेज होने पर भी, अपनी आत्म-शक्ति और साधारण सत्ता से प्रबल प्रतापी मुगल बादशाह औरंगज़ेब का बड़ी मुस्तैदी और योग्यता से मुक़ाबिला किया। राजसिंह की विशेषता, राजपूतों की वह प्राचीन प्रसिद्ध जूझ मरने की भावना नहीं—अपितु—विलक्षण सेना नायकत्व—रणपाण्डित्य, दूरदर्शिता और साहस में है। उन्होंने अस्तंगत राजपूत सत्ता को एकबार अपने पराक्रम से फिर से उभारा। उन्हीं की बदौलत औरंगज़ेब की बढ़ती हुई हिन्दू मन्दिरों के विध्वंस की प्रवृत्ति रुकी। उन्हीं की सहायता और आश्रय पाकर राठौरों ने विपत्ति सागर से उद्धार पाया और अन्त में मुग़ल तख्त का भाग्य उनके हाथ का खिलौना बना। राजसिंह ने बड़ी से बड़ी राजनैतिक विपत्तियाँ अपने सिर पर दूसरों के लिये लीं। ज़ज़िया के विरोध में उनका औरंगज़ेब के नाम लिखा हुआ प्रसिद्ध पत्र उनके साहस और ओज का परिचायक है। वे अपने युग में हिन्दुत्व का प्रतिनिधित्व करते थे। उनका जीवन एक हिन्दु प्रतिनिधि के नाते उस काल के समस्त भारत के हिन्दुओं में अप्रतिम था। उनके व्यक्तित्व से हिन्दुओं को बहुत जीवन मिला था। कहना चाहिए कि आधुनिक उदयपुर की गद्दी की दृढ़ता का बहुत अंश तक राजसिंह ही कारण है।

उनका जन्म सन् १६२१ में २४ सितम्बर को हुआ। और सन् १६५२ की १०वीं अक्टूबर में २३ वर्ष की आयु में गद्दी नशीनी हुई।

उसी वर्ष उन्होंने श्री एकलिङ्ग जी में जाकर रत्नों का तुलादान किया, जो भारतवर्ष के इतिहास में एकमात्र उदाहरण है। सन् १६५३ की ४ फर्वरी को उनका राज्याभिषेकोत्सव हुआ। और चाँदी का तुलादान किया। इसी अवसर पर शाहजहाँ ने उन्हें राणा का ख़िताब, पाँच हज़ारी ज़ात और ५ हज़ार सवारों का मनसब देकर जड़ाऊ तलवार, हाथी, घोड़े वगैरा भेजे। परन्तु राजसिंह ने गद्दी पर बैठते ही चित्तौर के क़िले की मरम्मत शुरू करदी। इस ख़बर को सुनकर शाहजहाँ अजमेर ख़्वाजा की दरगाह की ज़ियारत करने के बहाने से आया और अब्दालबेग को क़िले की मरम्मत देखने को भेजा। और जब उसने लौट कर बताया कि पश्चिम की ओर ७ दर्वाज़ों की मरम्मत करली गई है, और कई नवीन दर्वाज़े बना लिए गये हैं। जो जगह ऐसी थीं जहाँ चढ़ना संभव हो सकता था वहां दीवारें खड़ी करली गईं हैं। तब बादशाह ने सादुल्लाखाँ वज़ीर आला को ३० हज़ार फौज के साथ तमाम मरम्मत ढहाने के लिये भेजा। उस समय राणा ने लड़ना उचित न समझ बादशाह से माफी मांगली और पाटवी कुँवर को जिनका नाम बादशाह ने सौभाग्यसिंह रखा था भेज दिया। बादशाह ने कुँवर को ६ दिन पास रख कर हाथी, घोड़ा और सिरोपाव देकर विदा किया। परन्तु ज्योंही शाहजहाँ बीमार पड़ा और शाहजादों में गद्दी के उत्तराधिकार की गड़बड़ चली कि इस सुयोग से लाभ उठा कर राणा ने अपने पुराने परगने वापिस ले लिये। और जो-जो हिन्दू सरदार सादुल्लाखाँ के साथ चित्तौर का क़िला ढहाने आये थे एक एक को भली भाँति दण्ड दिया गया। उधर समूनगर के युद्ध में दारा का भाग्य फूटा और बाप को कैद करके औरंगज़ेब तख्त पर बैठा। वह प्रथम ही से राणा को मिलाने की खट पट करता रहा था। विजयी होने पर उसने राणा की पद वृद्धि कर ६ हज़ार ज़ात व ६ हज़ार सवार का फ़र्मान भेजा और ५ लाख रुपये तथा १ हाथी और हथिनी भेजी। साथ ही कुछ परगने वापिस कर दिये।

राणा कूटनीतिज्ञ औरंगज़ेब के इस व्यवहार पर पिघल गये और दारा की मदद न की। हालांकि उसने सिरोही में शरण लेने के बाद राणा को एक करुण पत्र लिखा था। अगर उस समय महाराणा और राठौर जसवन्तसिंह मिलकर दारा की सहायता करते तो भारत के इतिहास का कुछ और ही रंग होता।

अस्तु! इधर राणा अपने भीतरी संगठन में लगे उधर औरंगज़ेब ने अकंटक हो अपने हाथ पैर निकाले। उसकी मुल्ला वृत्ति और पक्षपात पूर्ण शासन तथा पिता और परिवार के साथ किये दुर्व्यवहार के कारण हिन्दुओं में काफी असन्तोष फैल गया और घटनाचक्र से राजसिंह बादशाह के भारी कोप भाजन बन गये। राजसिंह को परिस्थिति से विवश हो भारी भारी शाही अपराध करने पड़े। उन्होंने बादशाह की मंगेतर रूपनगर की राजकन्या से ब्याह किया। गोवर्धन के गुसाइयों को नाथद्वारा और कांकरौली में आश्रय दिया। जसवन्तसिंह के पुत्र को शरण दी। सब से अधिक बादशाह को ज़ज़िया के विरुद्ध उपदेश दिया। इन सब कारणों से रुष्ट होकर बादशाह अपनी समस्त सेना को ले मेवाड़ पर चढ़ दौड़ा। परन्तु दुर्गम अरावली की गोद में मेवाड़ का राजवंश और जनता आश्रय पाकर अल्प शक्ति होने पर भी बादशाह को तंग करने में सफल हुए।

सन् १६७९ की तीसरी सितम्बर को बादशाह ने महाराणा से लड़ने के लिये दिल्ली से प्रस्थान किया और १३ दिन कूच करके अजमेर में आनासागर पर पड़ाव डाला। शाहज़ादा अकबर जो पालम में मुकीम था पहिले ही अजमेर को रवाना कर दिया गया था। बादशाह की चढ़ाई की ख़बर पाते ही राणा ने अपने प्रमुख सरदारों को बुला युद्ध सभा की। इस सभा में कुँ० जयसिंह, कुँ० भीमसिंह, रावल जसराज, (डूँगरपुर का) राणावत भावसिंह (म० अमरसिंह के पुत्र सूरजमल का तीसरा पुत्र)

महाराज मनोहरसिंह, (म० कर्णसिंह के पुत्र गरीबदास के पुत्र) महाराज दलसिंह, (म० कर्णसिंह के छोटे पुत्र छत्रसिंह के पुत्र) अरिसिंह (महाराणा के भाई) अरिसिंह के चार पुत्र (भगवानसिंह, सुभागसिंह, फ़तहसिंह गुमानसिंह) राव सबलसिंह चौहान (बेदले वाला) झाला चन्द्रसेन (बड़ी सादड़ी वाला) रावत केसरीसिंह और उसका पुत्र गंगादास (बानसी वाले) झाला जैतसिंह (देलवाडे का) पँवार वैरिसाल (बीजोलिया का) रावत महासिंह (बेगूंवाला) रावत रत्नसिंह (सलूंवर का) सांवलदास (बदनौर का) रावत मानसिंह (कानौड़वाला) राव केसरीसिंह चौहान (पारसौली का) महकमसिंह (भींडरवाला) राठौर दुर्गादास, राठौर सौनिक, विक्रम सोलंकी, रावत रुक्मांगद (कोठारिये का) झाला जसवन्त (गोगूंदे का) राठौर गोपीनाथ (घाणेराव का) राजपुरोहित गरीबदास, मेहता अमरसिंह (नीमडी का) खीची रामसिंह, डोडिया महासिंह, मन्त्री दयालदास और अबूमलिक अज़ीज उपस्थित थे।

सलाह यह ठहरी कि सब कोई पर्वतों में चले जाँय और बस्तियाँ उजाड़ दी जाँय। ५० हजार भील और बहुत से भोमिये सरदार भी यहाँ राणा से आ मिले। नेणवारा (भोमट) में राणा का परिवार मुक़ीम हुआ। राणा के पास सिर्फ़ २० हज़ार सवार और २५ हज़ार पैदल थे। राणा ने घाट-घाट और नाके-नाके पर ऐसा बन्दोबस्त कर दिया कि पद-पद पर शत्रुओं का रास्ता रोका जाय और उनका ख़ज़ाना और रसद लूट ली जाय।

२७ अक्टूबर को बादशाह ने तहव्वुरखाँ सेनापति को मांडल आदि परगने ज़ब्त करने और हसनअली को राणा से लड़ने भेजा। हसनअली के पास ७००० सेना थी। १ दिसम्बर को वह स्वयं भी उदयपुर की ओर चल दिया। उसके साथ योरोपियनों का तोपख़ाना भी था—बंगाल से शाहज़ादा मुअज्ज़म भी अपनी सेना सहित आ गया था। देवारी की

घाटी में वहां के रक्षकों से बादशाह का युद्ध हुआ जिसमें राठौर गोरासिंह मारे गये और रावत मानसिंह घायल हुए। घाटी पर बादशाह का अधिकार हो गया। यहां से बादशाह ने राणा के पीछे पहाड़ों में हसन-अली खां को बड़ी सेना के साथ भेजा और शाहज़ादा मुअज्ज़म को खानेजहां सादुल्लाखां और इक्का ताजखां के साथ उदयपुर भेजा। वहां सब जगह सुनसान था। इक्काताजखां और सादुल्लाखां ने महलों के आगे बने प्रसिद्ध जगदीश के मन्दिर को तोड़ डाला। २० मांचा तोड राजपूत जो वहां तैनात थे, वे एक-एक कर के मारे गए। बादशाह ने भी उदय-सागर पर के ३ मन्दिर ढहवाए। हसनअली ने राणा का पीछा करके उस पर हमला किया और बहुत सी रसद और सामान लूट कर २० ऊँटों पर लादकर बादशाह की सेवा में भेजा और १७२ मन्दिर ढहाए। बादशाह ने खुश होकर उसे बहादुर आलमशाही का ख़िताब दिया। बादशाह ने चित्तौर के आसपास ६३ मन्दिर गिरवाए और शाहज़ादा अकबर, हसनअलीखां, मुअज्ज़मखां, रजीउद्दीनखां को चित्तौर रक्षा का भार दे अजमेर लौट आया। बादशाह के लौटते ही राजपूतों ने शाही थाने लूटने शुरू कर दिए। जिससे मुगल सेना की व्यवस्था बिगड गई और उनका आतंक उस पर छा गया। इसी बीच राणा ने बहुत से शाही रसद लूट ली और शाही थाने बर्बाद कर दिए। फलत· पहला आक्रमण निष्फल रहा।

इसके बाद बादशाह ने दूसरी युद्धयाजना यह की कि शाहज़ादा आज़म चित्तौर से देवारी और उदयपुर होता हुआ पहाड़ों में बढ़े, और मुअज्जम राजनगर से तथा अकबर देसूरी से। इस धावे में बादशाह ने चित्तौर, पुर, मांडल, मांडलगढ़, वैराट, भैसरोढ़, मन्दसौर, नीमच, जीरन, ऊँटाला, कपासन, राजनगर और उदयपुर में अपना दख़ल कर थाने नियत किए। अकबर उदयपुर आया और श्री एकलिङ्ग की ओर को बढ़ा। रास्ते में नाके-नाके पर लड़ाइयां हुईं। इनमें कोठारिए के

रुक्माङ्गद के पुत्र उदयभान और अमरसिंह चौहान ने बड़ी वीरता दिखाई उदयभान को वीरता के उपलक्ष में १२ गांव मिले। हसनअलीखां जो पहाड़ों में घुस गया था परास्त होकर भागा। अब महाराणा ने कुँवर भीमसिंह को गुजरात पर भेजा। उसने ईडर का विध्वंस करके बडनगर को लूटा और ४० हज़ार रु० दण्ड लिए। फिर अहमदनगर जाकर २ लाख का माल लूटा। बादशाह ने मन्दिर गिराए थे, कुँवर भीमसिंह ने ३०० के लगभग मस्जिद ढहाईं। उधर मन्त्री दयालदास ने मालवे पर धावा बोल दिया और नगर-नगर से दण्ड लिया तथा थाने बैठाए, मस्जिदें गिराईं और कई ऊँट सोने से भर कर ले आया। उधर राठौर सांवलदास ने बदनौर पर भयानक आक्रमण किया जहां फौजदार रुहिल्लाखां १२ सौ सवारों सहित ठहरा था। वह इस आक्रमण से ऐसा घबडाया कि सारा सामान छोड़ रातोंरात भाग खड़ा हुआ। इसी भांति शक्तावत केसरीसिंह के पुत्र गंगदास ने ५०० सवारों के साथ चित्तौर के पास पडी शाही छावनी पर छापा मारा और १८ हाथी, २ घोडे कई ऊँट छीन कर राणा की नज़र किए। जिस पर राणा ने उसको कुँवर की पदवी, सोने के ज़ेवर समेत उत्तम घोड़ा और गांव देकर सम्मानित किया। इसी भांति कुँवर गजसिंह ने बेगूँ पर आक्रमण कर वहां की शाही सेना को तहस-नहस कर डाला।

अब कुँवर जयसिंह ने १३००० सवार और बीस हज़ार पैदल सेना लेकर जिसमें ३० के लगभग बडे बडे सरदार थे। चित्तौर की ओर कूँच किया—जहाँ शाहज़ादा अकबर ५० हज़ार सेना लिए मुक़ीम था। जयसिंह ने रात को प्रबल आक्रमण किया और अकबर की सेना को तहस-नहस कर दिया। अकबर हारकर अजमेर को भाग गया। राजपूतों ने हाथी घोडे तम्बू निशान और नक्कारा छीन लिए। छावनी में आग लगा दी। यहां से भाग कर अकबर ने नाडोल में मुकाम किया। वहां कुँवर भीमसिंह, राठोर गोपीनाथ और सोलंकी विक्रम ने १२०००

सेना लेकर उसे घेर लिया घोर युद्ध हुआ और उसका पूरा ख़ज़ाना लूट लिया। इस प्रकार इस आक्रमण में भी बादशाह विफल हुआ और सुलह की बातें शुरू कीं। इतिहासकार कहते हैं कि इसी बीच राजसिंह की मृत्यु हो गई। राणा राजसिंह ने जितने बड़े-बड़े काम किए उन सब में राजसमुद्र का निर्माण है, जिसके भीतर सोलह गांवों की सीमा आई है। इस तालाब के बनवाने के विषय में इतिहासकार भांति भांति की बातें कहते हैं। कोई कहते हैं कि विवाह के लिये जैसलमेर जाते वक्त नदी के वेग के कारण राजसिंह को दो तीन दिन रुकना पड़ा था इसलिये नदी को रोककर उसने तालाब बनवाने का विचार किया। किसी का मत है कि उसने एक पुरोहित, एक रानी, एक कुँवर और एक चारण को मरवा डाला था जिसका किस्सा यों कहा जाता है कि कुँ० सरदारसिंह की माता ज्येष्ठ कुँवर सुलतानसिंह को मरवा कर अपने पुत्र सरदारसिंह को राज्य दिलाने का प्रपंच रच रही थी—उसने राणा को कुँवर पर झूँठा शक दिलाया जिससे राणा ने सुलतानसिंह को मार डाला। फिर उसी रानी ने एक पुरोहित को पत्र लिख कर राणा को विष देने का षड्यंत्र रचा पर भेद खुल गया, और राणा ने पुरोहित और रानी दोनों को मरवा डाला। इस पर कुँ० सरदारसिंह स्वयं ज़हर खाकर मर गया। चारण उदयभानु ने राणा की निन्दा में कविता सुनाई इससे क्रुद्ध हो उसे मरवा डाला। इन हत्याओं के निवारणार्थ उसने ब्राह्मण से उपाय पूँछा और उन्होंने उसे विशाल तालाब बनवाने की सलाह दी। परन्तु कुछ लोगों का यह भी ख़याल है कि अकाल पीड़ित लागों को सहायता देने के विचार से यह तालाब बनाया गया। सन् १६६९ की १७ अप्रैल को पुरोहित गरीबदास के पुत्र रणछोरराय के हाथ से पंचरत्न के साथ नींव का पत्थर रखवाया गया, और सन् १६७१ की ३० जून को नाव का मुहूर्त किया गया। फिर सन् १६७४ में लाहौर, गुजरात और सूरत का बना हुआ जहाज डाला गया और सन् १६७६ की १४ वीं जनवरी

को प्रतिष्ठा का कार्य शुरू हुआ। अष्टमी को राणा ने उपवास किया, और देह शुद्धि प्रायश्चित्त आदि कर नवमी को अपने भाइयों, कुँवरों, रानियों, चाचियों, पुत्रबधुओं, कुटुम्बियों और पुरोहित गरीबदास सहित मण्डप में प्रवेश कर देव पूजन कर हवन किया। उस दिन राणा ने एक भुक्त रहकर रात्रि जागरण किया। दूसरे दिन नंगे पैर पैदल सपरिवार परिक्रमा की। ५ दिन में १४ कोस की परिक्रमा समाप्त कर पूर्णिमा को पूर्णाहुति दी और अपने पोते अमरसिंह को साथ बैठा कर स्वर्ण का तुलादान किया। इस तुला में १२००० तोले सोना चढ़ा। उसी दिन सप्तसागर दान किया। पटरानी सदाकुँवर ने चाँदी की तुला की। पुरोहित गरीबदास ने सोने की की। गरीबदास के पुत्र रणछोड़राय, राणा केसरीसिंह पारसोली वाले, टोडे के रायसिंह की माता और बारहट केसरीसिंह ने चाँदी की तुलाएँ कीं। इस उत्सव में राणा ने पुरोहित गरीबदास को १२ गांव और अन्य ब्राह्मणों को गांव, भूमि, सोना, चांदी तथा सिरोपाव दिये। पण्डितों, चारणों, भाटों आदि को ५५२ घोड़े, १३ हाथी तथा सिरोपाव दिये। मुख्य शिल्पी को २५ हज़ार रुपया दिये। अन्य चारणों को भी घोडे दिये। इस उत्सव के उपलक्ष में जोधपुर के राजा जसवन्तसिंह राठौर, आमेर के राजा रामसिंह कछवाहा, बूँदी के राव भावसिंह हाड़ा, बीकानेर के राजा अनूपसिंह, रामपुरा के चन्द्रावत महकमसिंह, जैसलमेर के रावल अमरसिंह, डूँगरपुर के रावल जसवन्तसिंह रीवां के राजा भावसिंह को एक एक हाथी, दो दो घोड़े और ज़रदोज़ी सिरोपाव भेजे थे। उत्सव के दर्शनार्थ बाहर से ४६ हज़ार ब्राह्मण और मंगते आए थे जो भोजन वस्त्र से सन्तुष्ट किए गये। तालाब के बनवाने में १०५०७६०८ रु० ख़र्च हुए थे। इसकी नौचौकी नामक बांध पर नाकों में २५ बड़ी बड़ी शिलाओं पर २५ सर्गों का राजप्रशस्ति महाकाव्य खुदा है जो भारत भर में सब से बड़ा शिलालेख है। इसकी रचना तैलंग गुसाईं मधुसूदन के पुत्र रणछोड़ भट्ट ने की थी।

इस तालाब के अलावा महाराणा ने सर्व ऋतुविलास नामक एक महल अपने कुँवरपदे में बनाया था जिसमें बावड़ी और बाग भी है। देवारी के घाटे का कोट और दर्वाजा तैयार कराया। उदयपुर में अम्बा माता का मन्दिर बनवाया। रंग सागर तालाब बनवाया जो पीछे पीछोले में मिला लिया गया। कांकरोली का द्वारिकाधीश का मन्दिर और राजनगर क़स्बा बसाया। एकलिङ्ग के पास वाले इन्द्रसर के पुराने बाँध की जगह नया बाँध बांधा। राणा महादानी था। अपने जन्म दिन और दूसरे अवसरों पर वह तुलादान और बड़े-बड़े दान किया करता था। वह महावीर था। उसे कुम्भलगढ़ जाते हुए ओढ़ो गाँव में किसी ने भोजन में विष खिला दिया जिससे २२ अक्टूबर सन् १६८० में सिर्फ ५१ वर्ष की उम्र में उसका देहान्त हो गया।

महाराणा की १८ रानियाँ थीं, जिनसे ९ पुत्र और १ पुत्री हुई। राणा रणपण्डित, साहसी, वीर, निर्भय, सच्चा क्षत्रिय, बुद्धिमान, धर्मनिष्ठ और दाता था। उसमें क्रोध की मात्रा अधिक थी। वह स्वयं कवि और विद्वानों का सत्कार करने वाला था। किसी कवि ने राणा की प्रशंसा में श्लोक लिखा है—

संग्रामे भीम भीमो, विविध वितरणे यश्च कर्णोपमेवः।
सत्ये श्रीधर्म सूनुः, प्रवल रिपु जये पार्थ एवापरोयम् ॥
श्रीमाम्वाजीन्द्र शिक्षा नय विधि कुशलः शास्त्रतत्वेतिहासे।
देवोऽयं राजसिंहो जयतु चिरतरं पुत्रपौत्रैः समेतः ॥१॥

प्रस्तावना

——:❀:——

मानव स्वभाव

मानव स्वभावतः एक सामाजिक प्राणी है। वह जो कुछ देखता है, कल्पना या अनुभव करता है, उसे अन्य पर, अपने निकट सहयोगी पर प्रकट किये बिना शान्ति लाभ नहीं करता, इसे चैन नहीं पड़ता ! मनुष्य की कल्पना, विचार तथा अनुभव इसीलिये जन्म धारण करते हैं कि वे सृष्टा के मस्तिष्क तथा हृदय से आविर्भूत होकर सहृदय श्रोताओ तथा दर्शकों के हृदय को रस स्रावित कर सकें। इसी मानव प्रकृति से काव्य, नाटक, आख्यायिका तथा उपन्यास आदि का जन्म होता है।

मनुष्य अपनी बात को दूसरों पर इंगितो (संकेत) या भाषा (बातचीत) द्वारा प्रकट करता है। और कभी-कभी वह इनके अतिरिक्त भी, वह किसी का अनुकरण या अभिनय करके भी अपने मन की बात दूसरों को सुनाता है। इसमे सफल होने पर इसे विशेष आनन्द प्राप्त होता है। मनुष्य की यही प्रवृत्ति नाटकों के जन्म धारण करने का मूल रूप है। यह मानव प्रवृत्ति किसी देश, जाति तथा धर्म की सीमा में नहीं सीमित हुई किन्तु यह तो सदा ही असीम तथा साश्वत रही है।

काव्य के भेद

काव्य की जन्मदात्री भी मनुष्य की यही प्रवृत्ति है, इसे हम पहिले ही कह आये है। साहित्य शास्त्र में काव्य के दो विभाग किये गये हैं। श्रव्य काव्य तथा दृश्य काव्य।

श्रव्य काव्य के अन्तर्गत उपन्यास, कहानी, आख्यायिका तथा वर्णन सम्बन्धी साहित्य का प्रवेश माना गया है। इसमें लेखक अपनी बुद्धि, राग तथा कल्पनाओं का चित्रण पात्रों में तो करता ही है साथ ही साथ वह स्वयं भी अपने पात्रों के साथ चलता है, उन्हे मार्ग सुझाता है, समय विशेष पर उसे सलाह देता है, उसकी कालिमा, उसका धुंधलापन आदि को दूर करता है। वह पाठकों की विचारशक्ति को उत्तेजित नहीं करता। दृश्य काव्य के अन्तर्गत नाटक या रूपक की गणना होती है। नाटक में लेखक स्वयं कुछ भी कहने का अधिकारी नहीं होता। रंगमंच पर अवतीर्ण होने के पश्चात् नाटक के पात्र अपना कार्य करने में स्वतंत्र है, यदि कहीं धुंधलापन या किसी प्रकार की नाटककार के विचारों की उलझन होगी तो उसे लेखक स्वयं आकर नहीं स्पष्ट करेगा। वह तो अदृश्य ही बना रहेगा। हाँ! दृश्य होंगे उसके विचार, कल्पनारूपी पात्र ही। अतः श्रव्य काव्य को मानव इतिहास में प्रथम जन्म मिला था और दृश्य काव्य को सदियों के बाद। बहुत कुछ सीखने के पश्चात्! दृश्य काव्य इसीलिये कष्ट साध्य बना रहा है कि इसकी रंगभूमि, पात्र, वेशभूषा,

देशकाल, प्रकृतिचित्रण आदि सिर्फ किसी काव्यकार रूपी चित्र-कार की भिन्न रंगों का एक स्वप्निल विश्व सर्जन करनेवाली लेखनी रूप तूलिका ही में विद्यमान नहीं रहते किन्तु उनका अस्तित्व पृथक कागज़ और कलम की दुनिया से अलग भी बनाना पड़ता है, नाटककार सदा से बनाता आया है। लक्ष्मीपुत्र ने नाटककार की प्रतिभा को साकार, सजीव प्रतिकृति का रूप देने के लिये अपना परिश्रम तथा धन दोनों को न्यौछावर किया है।

नाटक का जन्म

कहानी बहुत पुरानी है। सदियों से सुनते आ रहे हैं, पता नहीं इसे किस ज्ञानी उर्वरा मस्तिष्क ने जन्म दिया था। मानव सभ्यता का आरम्भिक काल था। धर्म, समाज, राजनीति आदि का जन्म भी न हुआ था। साहित्य, संस्कृति सम्भव है जन्म धारण की बाट देख रहे थे। मनुष्य सरल, सीधी प्रकृति का तथा ज्ञान रहित था।

प्रकृति परिवर्तन उसने देखा! उसे ऐसा भासित होने लगा जैसे कोई प्रबल शत्रु अपना प्रतिशोध लेना चाहता है या अपने आधिपत्य की पूर्ण सूचना दे रहा है। प्रचण्ड प्रभाकर की भयंकर धूप और कड़ाके की सर्दी ने उसे प्रकृति पूजने पर विवश किया। दीर्घकाल तक वह प्रकृति की सेवा करता रहा। इसी प्रकृति पूजन से गीतों का, गीतिकाव्यों का जन्म हुआ।

प्रकृति परिवर्तन की स्थिरता देखकर मानव ने प्रकृति से भी किसी बड़ी शक्ति का अनुमान कर उसकी पूजा आरम्भ कर दी। पहिले प्रकृति पूजन का आशय प्राकृतिक विपत्तियो से त्राण पाना था किन्तु अब सर्वोपयोगी शक्ति की आराधना का लक्ष्य धन धान्य की वृद्धि तथा अपने शिशु संसार की कल्याण कामना थी। ऋतु परिवर्तन काल मे पूजा के रूप में उत्सवों ने जन्म धारण किया। भारतवर्ष में जैसे होलिकोत्सव, अन्नपूर्णा, गोर्धन आदि जैसे धनधान्य की वृद्धि के लिये उत्सव मनाये जाते हैं प्राचीन काल मे यूनान, चीन, जापान आदि देशो में भी इसी प्रकार के उत्सव हुआ करते थे। धन, धान्य की देवी, देवताओ की पूजा तो इन उत्सवो में होती ही थी, साथ ही उन देवताओ तथा वीर पूर्वजो के रूप बनाकर भी उत्सव करने वाले अनेक प्रकार की नकल करके, हाथ, पॉव आदि की चेष्टाएँ करके दर्शको का मनोरंजन किया करते थे। समय-समय पर कुछ आपस मे वातचीत भी कर लिया करते। गीत तो उत्सव के प्राण ही होते थे।

इस प्रकार गीत, वार्तालाप, वेशभूषा तथा नकल आदि से नाटक का जन्म हुआ। समय के साथ ही नाटक के रूप तथा रंगशालाओ मे परिवर्धन होने लगा और आगे चल कर वह साहित्य श्रेणी मे परिगणित हो गया। संसार के सभी देशो में नाटक का जन्म इसी प्रकार हुआ। भारतवर्ष की रामलीला, रासलीला तथा यूनान की नाटक मण्डलियॉ इसका प्रबल

प्रमाण है। नाटको का जन्म तो प्रायः बहुत से देशो तथा जातियो मे बहुत ही प्राचीन काल में हो चुका था किन्तु सभी जातियो के नाटक अभी तक साहित्य श्रेणी में नहीं आये है। उनके लक्षण तथा परिभाषाएँ अभी अधूरी ही है। भारतवर्ष जहाँ अन्य बातो मे अग्रणी समझा जाता रहा है वहाँ नाटक तथा नाट्यसाहित्य मे भी वह अग्रणी ही बना रहा। किन्तु शायद आज नहीं।

सर्व प्रथम नाटककार

ऋग्वेद विश्व साहित्य की प्राचीनतम निधि है। इस पवित्र ग्रन्थ में अनेको देवी देवताओ के आख्यान, गीत तथा वार्तालाप भरे हुए हैं। यूरोप के सभी प्रसिद्ध विद्वानों ने नाटको का जन्मदाता भारत को ही माना है। किन्तु नाटक के मूलतत्त्वो की विद्यमानता मे भी श्रीयुत रिजवे भारत मे नाटको की उत्पत्ति सर्व प्रथम नही मानते, उनका यह कथन केवल पक्षपात पूर्ण ही कहा जा सकता है। कथाबीज, गीत तथा वार्तालाप के होने पर अनुकरण या नकल कब शेष रह सकती है? भारत में नाटकों की प्राचीन प्रसिद्धि का कारण थी "कठपुतली" जिसे संस्कृत में 'पुत्रिका' पुत्तली पुत्तलिका आदि नामो से सम्बोधित किया है तथा यूनानी भाषा मे पुलाय या "अप्पूपुला"। जिसका आशय है छोटी लड़की, ये हाथी दाँत, सींग, लकड़ी या कपड़े आदि से बनाई जाती थी। भारत इन कठपुत-

लियों के निर्माण में इतना सिद्धहस्त था कि इसने इन निर्जीव कठपुतलियों के बोलने के लिये जिह्वा तथा चेष्टाएँ करने के लिये अवयवो में चेतना तक प्रदान कर दी थी। हमारे साहित्य में कितनी ही कथाएँ आती हैं जिनमें यह स्पष्ट रूप से लिखा है कि कठपुतलियाँ आपस मे संस्कृत में सम्भाषण करती थीं, दासी का कार्य करती थीं, यहाँ तक कि जिन्हे देखकर रावण जैसे विचारशील व्यक्ति भी भ्रमित हो जाते थे। वह भी यह नहीं पहिचान सका कि यह कठपुतली है या सीता ? सूत्रधार तथा स्थापक भारतीय नाट्यसाहित्य के बहुत ही परिचित शब्द हैं। इनका भी इन्हीं कठपुतलियो से बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। जो पात्र कठपुतलियो का सूत्र संचालन करता था वही सूत्रधार कहलाया और जो इनकी रंगमंच मे स्थापना करता था उसे ही स्थापक कहा गया था। शरीरधारी पात्रों के रंगमंच पर अवतीर्ण होने पर स्थापक का कोई सम्बन्ध न रहा और सूत्रधार ने भी धागों के स्थान पर केवल नाटक का संचालन करने का उत्तरदायित्व लेकर अपना अस्तित्व अवशेष रखा !

चीन में आज भी नाटक आरम्भ होने से पूर्व कठपुतलियों का नाच करवाया जाता है।

इन्हीं कठपुतलियों की सहायता से छाया नाटकों का जन्म हुआ जिन्हे हम आज की बीसवीं सदी की सवाक फिल्मो का मूलरूप कह सकते हैं। चमड़े की कठपुतलियाँ प्रकाश के आगे नचायी जाती थीं उन्हीं का प्रतिबिम्ब सामने के पर्दे (Screen)

पर पड़ता था। दर्शक बड़े चाव और आनन्द में मनुष्यो की भाँति ही सजीव सी चेष्टाएँ तथा क्रियाएँ करनेवाली उस प्रतिकृति को देखा करते थे। छाया नाटकों का मुख्य आधार प्रायः रामायण तथा महाभारत आदि की कहानी हुआ करती थी। जावाद्वीप में छाया नाटको का प्रचार भारत की देखादेखी ही हुआ।

डा० पिशल का तो यहाँ तक दावा है कि मध्ययुग में यूरोप में जो कठपुतलियों का नाच हुआ करता था वह भारत की ही नकल है। क्लाउन तथा अन्य मसखरे पात्र भी जर्मनी तथा अंग्रेजी साहित्य में भारतीय विदूषकों की ही नकल है। क्योंकि इस पात्र कीप्रधानता प्राचीनकाल से भारतीय साहित्य मे ही उपलब्ध है अन्य में नहीं। कठपुतली, सूत्रधार, स्थापक, छायानाटक तथा विदूषक आदि भारतीय नाटकों को प्राचीनता सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है।

भारत का नाट्य साहित्य

भारत का नाट्य साहित्य भी बहुत प्राचीन है। हमारे नाट्य शास्त्र के प्रथम आचार्य भरत मुनि माने जाते हैं। उनका नाट्य शास्त्र अनेक गवेषणापूर्ण अनुसन्धानों, तर्क, मीमांसाओं तथा सर्वांगपूर्ण परिभाषाओं से ओतप्रोत है। विश्व के नाट्य जगत में तब लक्षण ग्रन्थों का जन्म ही हो रहा था जब भारतवासी भरत मुनि के नाट्य शास्त्र में अनेक प्रकार की रंगशालाओं, नाटकों की विभिन्नताएँ, नृत्य गीत, वेश भूषादि परिवर्तन, भिन्न भाषाएँ,

पात्र, शैली, उद्देश्य आदि पर गहन गम्भीर तर्क पूर्ण विवाद, तत्वरूप अमृत शत धाराओ के रूप में पाठकों तथा श्रोताओं को आप्यायित करता था। पाणिनीकाल से भी हजार वर्ष पूर्व भारत मे नाटकों का जन्म हो चुका था इसे स्वयं पाणिनी ने अपने व्याकरण ग्रन्थ मे शिलालिन् तथा कृशाश्व नामक दो आचार्यों का नाम देकर सिद्ध कर दिया है।

यूनानी प्रभाव

यवनी, यवनिका और शाकार आदि शब्दो का प्रयोग देख कर कुछ विद्वानो की धारणा सी वन गई थी कि भारतवासियों ने यूनानियो से नाट्यकला ग्रहण की। किन्तु अव निम्नलिखित प्रवल प्रमाणो से वह धारणा निर्मूल सिद्ध हो चुकी है।

१—भारतवासियों ने कभी भी यूनानी भाषा की सिद्धहस्तता प्राप्त नहीं की। कनिष्क के राजदर्बार मे तथा सिक्को पर की अंकित यूनानी भापा टूटी फूटी तथा वहुत ही निम्न कोटि की है। इसी भाषा की भित्ति पर नाट्य शास्त्र रूपी प्रासाद नहीं स्थिर रह सकता।

२—यूनानी तथा भारतीय नाटकों के तत्व में आकाश पाताल का अन्तर है। भारतीय नाटको में सुखान्त दुःखान्त का कोई नियम नही। किन्तु हमारे प्रत्येक नाटक की समाप्ति सुखान्तक रूप में होगी। यूनान इसके सर्वथा अपवाद स्वरूप है।

३—भारतीय नाटको में प्रकृति वर्णन की प्रधानता होती है।

हमारा प्रत्येक नाटक प्रायः प्राकृतिक दृश्य के वर्णन से आरम्भ होता है। किन्तु यूनानी नाटकों में चरित्र चित्रण की प्रधानता होती है। इन्हीं कारणों से स्पष्ट हो जाता है कि भारत में नाट्य-कला का जन्म तथा विकास सर्वथा मौलिक तथा स्वतंत्र रूप में हुआ है।

भारतीय नाटकों का इतिहास

आज तक भारत का सर्व प्रथम नाटक कार महाकवि कालि-दास ही माना जाता रहा है किन्तु हाल ही मे ट्रावनकोर रियासत मे भास नामक कवि का परिचय प्राप्त हुआ है। भास के बीसियों नाटक भी उपलब्ध हो चुके हैं। वे संस्कृत, मौलिक तथा साहि-त्यिक दृष्टि से उच्चकोटि के हैं। दरिद्र चारुदत्त नामक भास के नाटक के आधार पर "मृच्छकटिक" की शूद्रक नामक नाटककार ने रचना की। अभी तो अनुसंधान तथा गवेषणा हो ही रही है। सम्भव है संस्कृत नाटकों का और भी प्राचीन इतिहास प्राप्त होकर विद्वानों और जिज्ञासुओं के परिश्रम को सफल कर सके। भास, कालिदास, भवभूति, शूद्रक, विशाखदत्त, भट्ट नारायण आदि सभी संस्कृत के प्रसिद्ध नाटककार दसवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी तक प्राप्त होते हैं। दसवी शताब्दी आज तक संस्कृत नाटको का आदिकाल ही माना जाता रहा है किन्तु इससे भी पूर्व पांच सौ वर्ष पहिले कनिष्क के राजकवि अश्वघोष का एक नाटक मिलने पर यह बात संदिग्ध हो गई है। भास,

अश्वघोष, कालिदास तथा भवभूति आदि भाषा तथा भावों की कसौटी पर नाटक कला तथा नाटक रचना के सिद्धान्तो की कसौटी पर पूरे उतरते है इसलिये इन्हे संस्कृत साहित्य के प्रारम्भिक नाटककार नहीं माना जा सकता। आरम्भिक नाटककारों ने तो नाटकों का सिर्फ सूत्रपात किया होगा। इतने मौलिक, संस्कृत अभिरुचि वाले तथा साहित्यिक नाटक निर्माण आरम्भ काल के नाटककारों के बस की वात नहीं कही जा सकती। अतः ये आदि के नाटक लेखक न होकर संस्कृत साहित्य के मध्ययुग के नाटककार हैं। चौदहवी शताब्दी के बाद संस्कृत नाटकों का ह्रास हो चला। भारतवासी मुस्लिम आक्रमणों के प्रत्याघातो में, उनकी निरंकुश राजसत्ता, पशुत्वपूर्ण धार्मिक प्रचार तथा उल्टी गंगा सी संस्कृति में संस्कृत नाटको को पनपते हुए न देख सके और अन्त में संस्कृत साहित्य ही जब नदिया तथा काशी की झोंपड़ियों में सिमिट सिमिट कर चला गया तब नाटकों की चर्चा तो मूर्खता ही थी।

हिन्दी नाटय साहित्य

भारतवर्ष नाट्यकला तथा नाट्य साहित्य दोनों में अन्य देशों से आज बहुत पीछे रह गया है। विशेष रूप से हिन्दी। जहां गुजराती, मराठी, बंगला, तेलगू आदि प्रान्तीय भाषाओं में भी उच्च कोटि के नाटक मिल सकेंगे वहाँ हिन्दी में इने गिने नाटककार मिल सकेंगे। इसका मूलकारण ही हिन्दी रंगमंच का

अभाव है। आज तक जितने भी हिन्दी नाटक खेले गये वे सब पारसी रंगमंच (Stage) पर ही खेले गये। जिस भाषा का अपना रंगमंच न हो उस भाषा मे मौलिक नाटककार तथा नाट्य साहित्य की उद्भावना क्या सम्भव है ? एक दो इने गिने हिन्दी नाटककार पता नहीं कैसे साहित्याकाश में चमक उठे। यह तो उनको तथा हिन्दी भाषा के भाग्य को ही श्रेय मिल सकता है। यह ठीक है आज की बीसवीं सदी में नाटक सफल नहीं हो सकते।

नाटकों का स्थान फिल्म (Film) सवाक चलचित्र ने लिया है। ढाई तीन घण्टे में जितना सुन्दर संस्कृत तथा परिष्कृत अभिरुचि का मनोरंजन चलचित्र दिखा सकता है वह क्या नाटकों में सम्भव है। जो मानव प्रकृति की स्वाभाविकता, प्रकृति के जैसे के तैसे समानता रखने वाले दृश्य, नदी, नाले, निर्झर, जीवित रूप में पशु, पक्षियों आदि को चलचित्र चित्रित (Paint) कर सकता है क्या वह एक क्या अनेक नाटकों मे भी सम्भव है ? विक्टोरिया दी भ्रेट, अमृतमन्थन, सीता, अमर ज्योति, देवदास आदि का क्या उसी सफलता से प्रदर्शन हो सकता है जैसा चलचित्र रूप मे हुआ है ? चलचित्र महीनो का अध्यवसाय, हजारों रुपयों का सत्व, तथा हजारों अभिनेता अभिनेत्रियो के परिश्रम का पुंज होता है। चलचित्र के निर्माणकाल में जितनी सुविधाएँ, पात्रों, लेखक दिग्दर्शक, संगीतज्ञ, कलाकार आदि को होती हैं उनका शतांश भी नाटक के कर्मचारियों को नहीं होतीं। यह प्रकट सत्य है,

चलचित्र में जितनी पूंजी की आवश्यकता होती है उसका दसवाँ भाग भी नाटक के लिये पर्याप्त होता है, फिर भी नाटकों का चलन रुक सा गया है। क्योंकि चलचित्र का स्थायित्व, धन का विनिमय, निर्माण की सुविधा आदि चलचित्रो की वृद्धि मे ही उत्तेजना देते है। इतना होते हुए भी मै यह मानने को प्रस्तुत नही हूँ कि नाटको की आज आवश्यकता ही नही। गुजराती, मराठी, बंगला, अंग्रेजी, फ्रैन्च, जर्मनी तथा इटली आदि सभी देशो मे नाटक तथा रंगमंच का सर्वथा नाश नही हुआ है। वहाँ अब भी उच्चकोटि के कलाकार, नाटककार तथा रंगमंच है। अंग्रेजी का बर्नार्डशा, आज भी इंगलिश साहित्य मे वैसा ही मान पा रहा है जैसा आज से सैकड़ो वर्ष पूर्व शेक्सपीयर पाता आ रहा था। कलकत्ते, पूने तथा बम्बई की गलियो मे आज भी प्रान्तीय भाषाओ के उच्चकोटि के नाटक अभिनीत होते दर्शक देख सकता है। किन्तु राष्ट्र भाषा का ही दुर्भाग्य है कि इसमे उच्चकोटि के मौलिक नाटको का सर्वथा ही अभाव सा है। यदि हम थोड़ी देर के लिये यह भी मान ले कि रंगमंच का स्टेज का युग नहीं है तब क्या हम यह मानने पर विवश किये जा सकते हैं कि नाटक पढ़ने के लिये तो कम से कम सदा ही जीवित बने रहेगे। नाटको का अभाव साहित्य में प्रगतिशील रुचि की कमी प्रकट करता है अतः आशा है होनहार साहित्य सेवक हिन्दी भाषा के भण्डार को, राष्ट्र भाषा के कोठार को जिसका एक कोना सिर्फ नाटको के अभाव मे ही रिक्त है, मौलिक, सुरुचि पूर्ण, तथा उच्चकोटि के

नाटकों से भरकर माता का शुभ आशीर्वाद प्राप्त करें। नाटक मानव जीवन के सदा से रहते आने वाले अंग है इनका साहित्य मे अभाव रहना अपने आपको अयोग्य बनाना है।

देवनागरी साहित्य विद्यालय,
दिल्ली।
ता० १८।१२।३८

मंगलानन्द गौतम प्रभाकर

राणा राजसिंह

पहिला अङ्क

पहिला दृश्य

(स्थान—उदयपुर का एक प्रधान बाज़ार। समय प्रातःकाल।
दो नागरिक सड़क पर खड़े बातचीत कर रहे हैं। बाज़ार
बन्दनवार और पताकाओं से सजा हुआ है।)

एक नागरिक—रत्नतुला। सुना तुमने ?

दूसरा नागरिक—सुनने की एक ही कही। मैं इन्हीं आँखों से
देखकर आ रहा हूँ।

पहिला नागरिक—सच ? तो तुम श्रीएकलिङ्ग गये थे ?

दूसरा—नहीं तो क्या, तुम्हे तो मालूम ही है वहाँ मेरी साली का
घर है। वही जो .....

पहिला—(बात काटकर) तो तुमने महाराणा का रत्नतुला अपनी
आँखों से देखा ?

दूसरा—अरे भाई ! कह तो दिया देखा-देखा, हमने ही नहीं हज़ारों ने देखा, जिसने देखा दंग रह गया ।

पहिला—दंग रह जाने की ही बात है भई । भला तुमने कहीं इतिहास शास्त्र पुराण में पढ़ा सुना है, किसी राजा ने रत्नतुला किया है ?

(एक ब्राह्मण रामनामी ओढ़े आता है)

ब्राह्मण—शास्त्र-पुराण पढ़ने की बात कौन कह रहा है भाई ।

पहिला नागरिक—हम कह रहे है जी हम । तुमने शास्त्रपुराण में कहीं पढ़ा सुना है ?

ब्राह्मण—अरे ! हमने शास्त्र-पुराण में नहीं पढ़ा तो क्या तूने पढ़ा है ? मूर्ख, शास्त्र-पुराण पढ़ना क्या यों ही होता है ।

पहिला—पढ़ा है तुमने ब्राह्मण देवता ?

ब्राह्मण—(लाल आँखें करके) नहीं पढ़ा है हमने ? दुष्ट, हमें मूर्ख समझता है ।

(दो-चार और नागरिक आते हैं)

सब—क्या झमेला है जी ।

ब्राह्मण—यह शूद्र कहता है हमने शास्त्र-पुराण नहीं पढ़ा ।

पहिला नागरिक—हम क्षत्रिय हैं शूद्र नहीं । हाँ, कहे देते है ।

दूसरा नागरिक—देवता जी, तुम नाहक बिगड़ने लगे । यह किसने कहा कि तुमने शास्त्र-पुराण नहीं पढ़ा ।

ब्राह्मण—हुँहूँ, हमने शास्त्र-पुराण नहीं पढ़ा । अरे ! १८ वर्ष

काशी में हमने क्या भाड़ झोंका है। शास्त्र-पुराण नहीं पढ़ा। हुँह !!

सब—अजी झगड़ा क्या है ?

पहिला नागरिक—रत्नतुला। रत्नतुला।

सब—कैसी रत्नतुला ?

पहिला—नहीं जानते, हमारे महाराणा राजसिंह ने श्री एकलिङ्ग में जा कर रत्नतुला की है।

सब—हमारे महाराणा साक्षात् देवता के अवतार हैं। उनके शरीर मे शिवका तेज है, वे जो करें सो थोड़ा।

पहिला नागरिक—पर मैं कहता हूँ, किसी ने सुना है कि कलियुग में किसी राजा ने रत्नतुला दान की हो।

सब—नहीं सुना-नहीं सुना। स्वर्ण तुला। चाँदी की तुला सुनी है। रत्न तुला नही सुनी।

पहिला नागरिक—(आँखें तरेरकर ब्राह्मण से) तुमने सुना है कहीं ? कलियुग में··· ·····

ब्राह्मण—(कानों पर हाथ धरके) नारायण-नारायण, नही सुना।

पहिला—सतयुग में, त्रेता में, द्वापर में।

ब्राह्मण—नहीं सुना भाई नहीं सुना।

पहिला—कही पुराण-शास्त्र मे देखा-पढ़ा है ?

ब्राह्मण—नहीं पढ़ा नहीं देखा। रत्नतुला करके श्री महाराणा राजसिह ने अपूर्व कृत्य किया हैं।

पहिला—यही तो हम कहते थे, तुम बिगड़े क्यो ?

ब्राह्मण—हम समझे तुम हमें मूर्ख समझते हो, हम काशी में १८ वर्ष............

पहिला नागरिक—भाड़ में जॉय तुम्हारे १८ वर्ष। तुमने हमें शूद्र कहा ?

सब लोग—अरे भाई जाने दो, जाने दो।

पहिला नागरिक—नही, कहो, हम शूद्र है ? (आस्तीन चढ़ाता है)

ब्राह्मण—नारायण, नारायण। अजी तुम ठाकुर हो भैया। हम से भूल हुई।

सब लोग—हॉ जी, तो महाराणाजी का रत्नतुला तुमने देखा है।

पहिला नागरिक—देखा नही तो क्या। कह तो रहे हैं। इन्ही आँखो से देखा। हीरा-मोती-मानिक और लालों के ढेर देखकर ऑखे चौंधयाती थी। बड़े-बड़े राजा महाराजा सरदारों ने यह महायज्ञ देखा। देखते-देखते राणा के शरीर के बराबर रत्न तोल कर ब्राह्मणो और दरिद्रों में बॉट दिये गये।

सब—धन्य, धन्य। वाह ! क्यों नहीं, राजसिंह सा नरपति होना दुर्लभ है।

एक—'होनहार विरवान के होत चीकने पात' आप लोग देखना, महाराणा राजसिंह के हाथो बड़े-बड़े काम होगे।

ब्राह्मण—हमने महाराणा की जन्मलग्न देखी है। महाराणा परम प्रतापी विजयी वीर है।

(नैपथ्य में गाजे-बाजे और बन्दूकों के छूटने का शब्द)

एक नागरिक—लो भाई। महाराणाजी की सवारी आ रही है।
आओ हम भी दर्शन कर लें।

(राणाजी घोड़े पर सवार सब सरदारों सहित आते हैं)

सब लोग—(हर्ष से) जय, महाराणा राजसिंह की जय।
हिन्दुपति हिन्दुसूर्य राणाजी की जय।
श्री एकलिङ्ग के दीवाण की जय।

(पर्दा बदलता है)

दूसरा दृश्य

(स्थान—चित्तौर का क़िला। मैदान में महाराणा राजसिंह जी अपने सर्दारों सहित खड़े बातें कर रहे हैं।)

महाराणा—तो यह ख़बर बिल्कुल सच है ?

रावत रघुनाथसिंह—(हाथ जोड़कर) पृथ्वीनाथ ! सेवक का विश्वस्त सूत्र से ख़बर मिली है।

महाराणा—कि समू नगर की लड़ाई में मुराद और औरंगज़ेब की सम्मिलित सैन्य ने दारा को परास्त कर दिया।

रावत रघुनाथसिंह—जी हाँ, महाराज ! और इसके बाद औरंगजेब ने कौशल से मुराद को कैद करके सलीमगढ़ में भेज दिया है और बूढ़े बादशाह को आगरे के क़िले में कैद कर लिया है।

महाराणा—दारा अब कहाँ है ?

रावत रघुनाथसिंह—वह पहिले पंजाब भाग गया था। पर औरङ्गज़ेब ने ताबड़तोड़ उसका पीछा किया। अब वह कच्छ गुजरात होता हुआ सिरोही में मुकीम है, वहाँ से उसने अन्नदाता के नाम एक खरीता भेजा है।

महाराणा—खरीते में क्या लिखा है ?

दीवान फतहचन्द—वह लिखता है कि हमने राजपूतों पर अपनी लाज छोड़ी है, और हम सब राजपूतों के मिहमान

होकर आये हैं। आप सब राजपूतों के सर्दार हैं। इस-लिए आपसे आशा है कि आला हज़रत को कैद से छुड़ाने में हमारी मदद करेंगे।

महाराणा—(ठण्डी साँस लेकर) अभागा दारा ! औरंगजेब की क्या ख़बर है ?

दीवान फतहचंद—दारा के पीछे पंजाब जाते वक्त उसने एक निशान भेजकर श्रीमानों का पद बढ़ाकर ६ हज़ारी ज़ात व ६ हज़ार सवार कर दिया है। साथ मे ५ लाख रुपये तथा एक हाथी और हथिनी भेजी है, और फर्मान भेजा है कि वदनौर, माण्डलगढ़ और बाँसवाड़ा दख़ल करलें, और पाटवी कुंवर को शाही ख़िदमत मे भेज दें।

राणा—(मुस्कुरा कर) देखा जायगा। क्या मोहकमसिंह मांडल से अभी नहीं लौटा ?

रावत मेघसिंह—लौट आया है अन्नदाता। माण्डलगढ़ को बाद-शाह शाहजहाँ ने रूपनगर के राजा रूपसिंह को दे दिया था। उसकी तरफ से महाजन राघवदास वहाँ का किलेदार तैनात हैं। मोहकमसिंह ने उसे बहुत सम-झाया। पर वह लड़ने-मरने को तैयार है गढ़ नहीं देता।

राणा—(भौंहों में बल डालकर) बनेड़ा और शाहपुरा वालों से तो मामला तै हो गया न ?

रावत मेघसिंह—जी हाँ अन्नदाता ! उन्होंने २६ हज़ार रुपया और शाहपुरा वालो ने २२ हज़ार रुपये दण्ड देकर आधी-

नता स्वीकार कर ली है। जहाजपुर, सावर, केकड़ी और फूलिया के ठिकाने भी आधीन हो गये हैं।

राणा—बहुत ख़ूब, मालपुरे और टोडे का समाचार कैसा है?

रावत मेघसिंह—मोहकमसिंह शक्तावत ने मालपुरे को ६ दिन तक लूटा और भारी ख़ज़ाना हुज़ूर में हाज़िर किया है। टोडे पर फतहचन्द कायस्थ ने चढ़ाई की थी। उसे रायसिंह की माता ने ६० हज़ार रु० देकर आधीनता स्वीकार करली है, वीरमदेव के नगर को उसने जलाकर ख़ाक कर दिया है।

राणा—उसकी सरकशी अब सही न जाती थी, आशा है वह सीधा हो जावेगा। हाँ टोंक, लालसोट और साम्भर?

रावत मेघसिंह—सोलंकी दलपत ने इन ठिकानो को परास्त कर सब से दण्ड उगाहा है, वह शीघ्र श्रीमानो की सेवा में हाज़िर होकर कैफियत निवेदन करेगा।

राणा—डूंगरपुर ठिकाने ने सरकशी की थी न?

रावत मेघसिंह—घणीखम्मा, अन्नदाता के प्रताप से रावल समरसिंह का मिज़ाज अब ठिकाने लग गया है। उसने १ लाख रुपया, १० गाँव, देशदाण और १ हाथी, १ हथिनी नजर कर आधीनता स्वीकार की है।

राणा—शरणागत को अभय। उसे १० गाँव, देशदाण और २० हज़ार रुपये छोड़ दिये जायँ। आज ही हमारी ओर से तसल्ली का फर्मान रावल जी को भेज दिया जाय।

रावत मेघसिह—जो आज्ञा दरबार।

राणा—देवलिये का मामला कैसे तै होगा।

दीवान फतहचन्द—यह सेवक देवलिये पर गया था। रावत हरीसिंह भागकर बादशाह के पास चले गये हैं। पर उनकी माता ने अपने पोते प्रतापसिंह को सेवा में भेज दिया है, साथ मे ५ हज़ार रु० और एक हथिनी दण्ड मे दी है। आगरे मे सहायता का कोई रंग ढंग न देखकर रावत हरीसिंह रावत रघुनाथसिह की मारफत शरण में आने की विनती करते हैं।

राणा—(गम्भीरता से) इस मामले पर पीछे मसलहत होगी। अभी हमें बहुत कुछ करना बाकी है। जिन-जिन ठिकानेदारों ने वज़ीर सादुल्ला के साथ मिलकर चित्तौर की मरम्मत ढहाने मे सहयोग दिया था उन सबको दण्ड मिल गया। पर चित्तौर की मरम्मत का गिराया जाना मेरी आँखो मे शूल सा चुभ रहा है। (बेचैनी से घूमता है फिर ठहरकर) परन्तु यही समय है।

दीवान फतहचन्द—श्री महाराज की क्या इच्छा है ?

राणा—दिल्ली का मुगल तख्त डिगमिगा रहा है। आओ सुयोग पाकर राजपूताने की नीव दृढ़ करलें। आप लोगों की सहायता से हमने गत १०० वर्षों से खोए हुए इलाक़े अपने राज्य-काल के प्रारम्भ ही मे हस्तगत कर लिये हैं। अब हमें अजेय चित्तौर की मरम्मत करना है

और अपने बाक़ी इलाक अधीन करना है। इसके बाद समस्त राजपूत शक्ति को जाग्रत करके उसे हम एकीभूत करेंगे। यह सब श्री एकलिंग भगवान् की कृपा से अवश्य होगा।

रावत मेघसिंह—(हाथ जोड़कर) पृथ्वीनाथ ! आलमगीर के ख़रीते का क्या होगा ?

राणा—आलमगीर कौन ?

रावत मेघसिह—औरंगज़ेव ने बादशाह होकर अपना नाम आलमगीर पीर दस्तग़ीर रखा है।

राणा—(हँस कर) ओह, समझा। कुँवर सुल्तानसिह को काका अरिसिह के साथ भेंट भलाई देकर दिल्ली भेज दिया जायगा। वे बादशाह आलमगीर को तख़्तनशीनी और विजय की बधाई दे आवेगे। (कुछ सोचकर) परन्तु सरदारो ! इस दुवले पतले पीर दस्तगीर से हमे कठिन मोर्चा लेना होगा। वह दृढ़ हाथो से राज्य करेगा। परन्तु चिन्ता नहीं। मैं राजपूताने मे वह जागृति की ज्योति जगाऊँगा कि जिसके आगे. मुग़ल तख़्त को झुकना होगा। परन्तु अभी यह वात रहे। कल प्रातःकाल ही हमे माण्डलगढ़ पर चढ़ाई करना है। सेना को कूँच की आज्ञा देदो, और सव तैयारियाँ कर लो।

रावत मेघसिंह—जो आज्ञा अन्नदाता ! (पर्दा गिरता है।)

तीसरा दृश्य

(स्थान—सलूँवर की हवेली। कचहरी का बाहरी हिस्सा।
सलूँवरा सरदार रावत रघुनाथसिंह और उनके पुत्र रत्नसिंह
बातें कर रहे हैं। समय—रात्रि)

रावत रघुनाथसिंह—तुमने सुना, राणा ने सलूँवर का पट्टा चौहान केसरीसिंह पारसोली वाले को लिख दिया है।

रत्नसिंह—सुना है पिताजी! हमें ठिकाना छोड़ना पड़ेगा।

रावत रघुनाथसिंह—मैं विद्रोह करूँगा।

रत्नसिंह—नहीं पिताजी, हम विद्रोह नहीं कर सकते।

रावत रघुनाथसिंह—किस लिये नही कर सकते? क्या प्राण रहते हम अन्याय सहन करेंगे? क्या हमारे शरीर मे बापा रावल का रक्त नहीं है, क्या हमारी तलवार मोथरी हो गई है। हमारी कलाई मे क्या उसे पकड़ने की शक्ति नहीं रही।

रत्नसिंह—यह सब कुछ अभी हैं परन्तु शत्रु के लिये। स्वामी के लिए नही। ठिकाना स्वामी ने दिया है, वह ले भी सकता है।

रावत रघुनाथसिंह—स्वामी ने क्या भीख मे दिया है। इतिहास मे क्या आग के अक्षरों मे सत्यव्रती चूड़ाजी के त्याग की कथा नहीं लिखी है। यदि हमारे पूर्वज चूड़ाजी इच्छा से गद्दी का त्याग न करते तो आज राणा के पद

पर मेरा अधिकार था। परन्तु हमारे वंश का इतना ही त्याग नहीं है। उसने सदैव सब से प्रथम सिर कटाकर मेवाड़ की रक्षा की है। उसका आज यह बदला ? कि हमारा ठिकाना छीना जाता है—हमारी सेवाओं का यह पुरस्कार।

रत्नसिंह—पिताजी ! हमारे पूर्वजों ने मेवाड़ के लिये जब ऐसे-ऐसे बड़े त्याग किये तब क्या हम इतना त्याग भी न कर सकेंगे?

रावत रघुनाथसिंह—त्याग ? इसे तुम त्याग कहते हो—यह अन्याय है। इसे हम सहन न करेंगे। जब तक मेरे हाथ में तलवार, और शरीर मे प्राण हैं, सलूँवर की सीमा पर किस की सामर्थ्य है जो दृष्टि करे। मैं रक्त की नदी बहा दूँगा। मेवाड़ के सभी सर्दार राणा के इस अन्याय के विरोधी हैं।

रत्नसिंह—यह सच है। परन्तु यह समय गृहकलह का नही। राणाजी के कान शत्रुओं ने भर दिये हैं। उनके विचार शीघ्र ही पलट जावेंगे।

रावत रघुनाथसिंह—तो तुम चाहते हो कि ठिकाना पारसौली वालों को सौंप दिया जाय ?

रत्नसिंह—महाराणा की आज्ञा का पालन होना चाहिये।

रावत रघुनाथसिंह—परन्तु मैं आज्ञापालन नही करूँगा।

रत्नसिंह—तो राणा की सेना बलपूर्वक ठिकाने को खालसा करने आवेगी।

ावत रघुनाथसिंह—मै उससे युद्ध करूँगा।

न्नसिंह—उसमे आपकी पराजय होगी।

ावत रघुनाथसिंह—जो हो सो हो।

न्नसिंह—व्यर्थ रक्तपात होगा।

ावत रघुनाथसिंह—मैं उसका ज़िम्मेदार नहीं।

त्नसिंह—गृहकलह में राज्य की शक्ति क्षीण होगी।

ावत रघुनाथसिंह—उसका फल राणा भोगेंगे।

रत्नसिंह—नहीं उसका फल मेवाड़ को भोगना होगा। पिताजी मैं ऐसा नहीं होने दूँगा।

रावत रघुनाथसिंह—तुम क्या करोगे?

रत्नसिंह—मैं आपको युद्ध न करने दूँगा।

रावत रघुनाथसिंह—पर मैं युद्ध करूँगा।

रत्नसिंह—तब मैं राणा जी की ओर से आप से लड़ूँगा।

रावत रघुनाथसिंह—तुम मुझसे लड़ोगे? तुम? मेरे पुत्र? राजपूताने मे किसी ने सुना है बेटा बाप से लड़े।

रत्नसिंह—अब लोग सुन लेंगे।

रावत रघुनाथसिंह—यही तुम्हारी पितृभक्ति है?

रत्नसिंह—जी हाँ पिता जी! आपके सम्मान की रक्षा के लिये मैं आप से लड़ूँगा।

रावत रघुनाथसिंह—मेरे सम्मान की रक्षा के लिये?

रत्नसिंह—जी हाँ, उससे मेवाड़ के सर्दार युद्ध से विरत रहेंगे और यह रक्तपात टल जायगा।

रावत रघुनाथसिंह—अच्छा मैं युद्ध नहीं करूँगा।

रत्नसिंह—पिताजी ऐसा ही होना चाहिये।

रावत रघुनाथसिंह—ऐसा ही होगा। परन्तु मैं मेवाड़ का त्याग करूँगा। इस अन्यायी राज्य मे मैं एक क्षण भी नहीं रहूँगा।

रत्नसिंह—पिताजी, सब बात सोच लीजिये।

रावत रघुनाथसिंह—तुम्हारे जैसे आज्ञाकारी पुत्र ही जब पिता के विरोधी है तब और क्या सोचना है। मैं इस राज्य मे न रह सकूँगा।

रत्नसिंह—पिताजी आप जैसे नरवरो की मेवाड़ को अभी जरूरत पड़ेगी। दिल्ली के तख़्त पर धूमकेतु उदय हुआ है, यह चुन-चुन कर राजपूताने के नक्षत्रो को ग्रास करेगा। मेवाड़ का तब कौन उद्धार करेगा।

रावत रघुनाथसिंह—मैं नही जानता। जहाँ सत्य, वीरता, सेवा और त्याग की कद्र नहीं। जहाँ स्वामी सेवक पर अन्याय करें वहाँ तेजस्वी पुरुष नही रह सकते। जाओ तुम अब। अधिक कुछ न कहो। मेरा निश्चय अटल है।

रत्नसिंह—पिताजी...... .....

रावत रघुनाथसिंह—चुप रहो। मैं आज्ञा देता हूँ।

(रत्नसिंह सिर नीचा किये रह जाते हैं। रावत रघुनाथसिंह तेजी से चले जाते हैं)

(पर्दा गिरता है)

चौथा दृश्य

(स्थान—रूपनगर का क़िला । समय—मध्याह्न—
राजा रूपसिंह और प्रधान बैठे हैं)

राजा—महाजन राघवदास ने क्या लिखा है ?

प्रधान—महाराज ! महाराणा ने मांडलगढ़ अधिकार मे कर लिया और २२ हज़ार रुपये दण्ड मे लिये ।

राजा—राणा का इतना साहस ? माण्डलगढ़ हमे शाही जागीर में मिला है । मैं इसे सहन नहीं कर सकूँगा । राघवदास ने इतनी जल्दी किला दे दिया ? किला काफी दृढ़ था । राघवदास ने दग़ा तो नहीं की ।

दीवान—नहीं महाराज ! उसने १ मास तक जमकर युद्ध किया और जब तक क़िले मे रसद और सेना रही, उसने मोर्चा लिया । महाराणा राजसिंह ने स्वयं क़िले पर आक्रमण किया था ।

राजा—राणा राजसिंह के पर निकले हैं । एकलिङ्ग पर रत्नतुला कर के उसका गर्व बढ़ गया है । पर मैं उसके गर्व को भंजन न करूँ तो मेरा नाम रूपसिंह नही । हमे बादशाह के पास अर्जी भेजनी चाहिये ।

दीवान—जैसी आज्ञा, पर सेवक का ख्याल है कि अर्जी भेजने से कुछ लाभ न होगा । नया बादशाह अपनी ही बहुत

सी झंझटों में फँसा है। अभी उसका पैर डिगमिगा रहा है। फिर मुझे विश्वस्त सूत्र से पता लगा है कि नये बादशाह आलमगीर ने महाराणा को ये परगने दखल करने को शाही फर्मान दे दिया था। महाराज, वास्तव में ये परगने राणा के ही तो थे।

राजा—परन्तु जो परगने शाही खिदमात के बदले हमें मिले हैं उनका इस प्रकार हमारे हाथ से निकल जाना हमारे लिये बड़ी ही लज्जा की बात है। मैं राणा से युद्ध करूँगा।

मन्त्री—(हाथ जोड़ कर) महाराज की जो मर्जी हुई सो ठीक है। परन्तु सेवक का निवेदन यह है कि युद्ध और सन्धि अपना और शत्रु का बलाबल देखकर ही करना बुद्धिमानी है। राजसिंह की शक्ति प्रबल है और हम उससे पार नहीं पा सकते।

राजा—परन्तु हमारी पीठ पर शाही हाथ है। माण्डलगढ़ को हम से छीन लेना हमारा नहीं बादशाह का अपमान है। बादशाह के पास यह सारी हकीकत लिखकर किसी सुयोग्य आदमी को भेज देना चाहिये।

मन्त्री—जो आज्ञा महाराज। मेरी सम्मति में महाजन राघवदास ही को इस कार्य के लिये भेजना ठीक होगा। वह बादशाह से सब ऊँच नीच निवेदन कर आवेगा। फिर जैसा अवसर होगा देखा जायगा।

राजा—अच्छा अभी यही रहे। पीछे हम स्वयं युद्ध करेंगे।

मन्त्री—तो मैं राघवदास को दिल्ली भेजने का प्रबन्ध करता हूँ।

राजा—हाँ, कीजिए।

(मन्त्री जाता है। पर्दा बदलता है।)

पाँचवाँ दृश्य

(स्थान—मेवाड़ का एक गाँव। दो-तीन किसान बैठे आग ताप रहे हैं और तमाखू पी रहे हैं।)

एक—सुना भाई तुमने ! राणाजी गोमती नदी के वेग को रोककर एक बड़ा भारी ताल बना रहे है। उसमें सोलह गाँवो की सीमा आवेगी।

दूसरा—गाँवों का क्या होगा ?

तीसरा—हमारी धरती भी जो ताल मे गई तो हम खायेंगे क्या ?

पहिला—उसका बन्दोबस्त तो राणाजी करेंगे। राणाजी क्या हमारी जमीन योंही छीन लेंगे।

दूसरा—छीन कैसे लेंगे। बदले में जमीन मिलेगी, हमने सुना है।

तीसरा—खाक सुना है तुमने। रुपये मिलेंगे रुपये। समझे।

पहिला—और यदि कोई अपनी धरती न दे तो ?

दूसरा—न कैसे दे ? राजा मांगे और न दे, यह भी कहीं हो सकता है ?

तीसरा—इस ताल से हमारा ही तो लाभ है।

दूसरा—हमारा क्या लाभ है ?

तीसरा—अरे, ताल बनेगा तो हमारी धरती को पानी की कोई दिक्कत ही न रहेगी।

पहिला—वाह रे मूर्ख ! धरती जब पानी में डूब जायगी तब पानी की जरूरत रही तो क्या ? और न रही तो क्या ।

दूसरा—धरती डूबे चाहे न डूबे । हमे क्या ? राणा धरती मांगेंगे तो हमे देना ही होगा—भाई ।

तीसरा—ऐसा नहीं है जी । राणाजी प्रजा की भलाई के लिये ही ताल बना रहे हैं ।

पहिला—सुना है राणाजी रूपनारायण के दर्शन को जल्द ही इधर आवेंगे और तब ताल का मुहूर्त होगा ।

दूसरा—सुनो भाई, राणा राजसिंह राजपूताने मे एकछत्र नर-पति हैं ।

तीसरा—क्यों नहीं । ऐसा धीर, वीर, दानी और चतुर राणा मेवाड़ के भाग्य ही से उसे मिला है ।

चौथा—तुमने सुना है । राणाजी की शरण में दूर-दूर से बादशाह के सताये हुए ब्राह्मण, यती, विद्वान् और शूरमा आरहे हैं । राणा सबका यथावत सम्मान करते हैं ।

पहिला—धन्य राणाजी ! धन्य मेवाड़ ! राणा राजसिंह से मेवाड़ के भाग्य जाग गये ।

दूसरा—परन्तु भाई, एक दिन बादशाह से गहरी छनेगी ।

पहिला—तो मेवाड़ भी अपनी आन निबाहेगा ।

तीसरा—इस बार हम भी तलवार पकड़ेंगे । देखना वह बढ़-बढ़-कर हाथ मारूँ कि जिसका नाम ।

(दो बालक आते है)

एक—काकाजी हम राणा की फौज में अपनी भरती करावेंगे।

दूसरा—और हम भी। मैंने और करनसिंह ने—तलवार के वे-वे हाथ राणाजी को दिखाये कि उन्होंने प्रसन्न होकर हमें यह सोने का कड़ा दिया।

एक किसान—शाबाश पुत्र! राजपूतों का सच्चा गहना तो तलवार ही है। हल बैल तो ठालीवैठा रुजगार है।

एक नवयुवक—काकाजी, क्षत्रिय के लिये यही धर्म है। आज गुरुजी बता रहे थे।

दूसरा किसान—ठीक कहते हो। जाओ। अब सो रहो (साथी से) ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे सोया हुआ मेवाड़ जाग रहा है।

दोनों युवक—हाँ, काकाजी, हमने पाठशाला में एक गीत सीखा है। उदयपुर मे सब लड़के वह गीत गाते टोली बाँध कर निकलते हैं। आप सुनेंगे काकाजी?

किसान—सुनाओ बेटे सुनूँगा।

(दोनों बालक गाते हैं)

अभय रहो मेवाड़।
अरावली के दिव्याञ्चल में,
बनघाटी दुर्गम पथ पूरित—
नभमण्डल के नीचे निर्भय—

मुदित रहो मेवाड़ ।

अभय रहो मेवाड़ ।

हल्दीघाटी के तरु पल्लव,

वीरवरों की अमर कीर्ति का—

मधुर राग गाते झुक झुक कर

विजय करो मेवाड़ ।

अभय रहो मेवाड़ ।

(गाते हुए जाते हैं । पर्दा बदलता है)

छठा दृश्य

(स्थान—उदयपुर का सर्व-ऋतुविलास महल। राणा राजसिंह और महारानी कृष्णकुंवर। समय—सन्ध्या काल)

रानी—स्वामी, क्या यह सच है कि सलूम्बरा सरदार रावत रघुनाथसिंह ने मेवाड़ त्याग दिया।

राणा—सच है ! वे अपना धर्म छोड़कर बादशाह के पास दिल्ली चले गये है।

रानी—रावत रघुनाथसिंह जैसे चतुर राजनीतिज्ञ वीर मेवाड़ में कम है ! महाराज, उनके साथ अन्याय हुआ है। सलूम्बरा का ठिकाना उनके बाप-दादों के रक्त का मोल है। आपने वह चौहानो को दे दिया ?

राणा—मैं वीर की पूजा करूंगा। पारसौली का केसरीसिंह वीर सरदार है।

रानी—तो आप उन्हे उदयपुर की गद्दी दे सकते थे। अपने सरदार का मान-भंजन वीर पूजा नहीं। रघुनाथसिह जी प्रकृत वीर हैं।

राणा—मुझे मालूम हुआ था कि वह मुझसे द्वेष करता है।

रानी—यह असत्य है—वह राज्य का सच्चा सेवक है।

राणा—उसका बादशाह की सेवा में जाना ही उसे अपराधी

प्रमाणित करता है। सुना है वह बादशाह के कान भरकर उसे मेरे विरुद्ध उभार रहा है।

रानी—महाराज, दुष्टों ने आपके कान भर आपको सरदार के विरुद्ध उभाड़ा है। महाराज को चूंडा और उसके वंशजों का उपकार यों न भूलना चाहिए था। गद्दी उनकी थी, यह तो आप जानते हैं।

राणा—परन्तु राणा होने पर तो मुझे आँखें खोलकर ही रहना चाहिये ?

रानी—हाँ स्वामी, यही मेरी इच्छा है। मैंने सरदार के पुत्र रत्नसिंह को बुलाया है।

राणा—किस लिए महारानी।

रानी—इसीलिए कि उसे बता दिया जाय कि सलूम्बरा का ठिकाना उन्हीं का है। आप उसे विश्वास दिलादें कि आप नया पट्टा रद्द कर देंगे।

राणा—ऐसा नहीं हो सकता महाराणी। राज-काज में स्त्रियों को अधिक रुचि रखना ठीक नहीं।

रानी—जब महाराणा के ऐसे विचार हैं तो ऐसा ही होगा। परन्तु स्वामिन्! स्त्री पति की अर्द्धाङ्गिनी है। वह सब कुछ सहन कर सकती है पर स्वामी के यश पर बट्टा नहीं सह सकती।

राणा—क्या कहा-बट्टा? कौन मेरे यश पर बट्टा लगाता है?

रानी—महाराज की ये छोटी-छोटी भूलें। जिस वीर ने श्री एक-लिङ्ग में रत्न तुला करके भारत के नरपतियों में शीर्ष-स्थान ग्रहण किया, जिस वीर ने अपनी भुजाओं के बल पर पूर्वजो के खोये राज्य को अपने प्रभुत्व के प्रारम्भ ही में प्राप्त किया। जिस वीर की यशोगाथा राजपूताने मे घर-घर गई जा रही है। जो हिन्दु-सूर्य, हिन्दु-धर्म-रक्षक है उसे अपने ही सरदार के प्रति ऐसा ओछा आचरण न करना चाहिये। राजा एक बड़ा वृक्ष है और सरदारगण उसकी शाखायें हैं। उन्हीं से उसकी शोभा और पुष्टि है। महाराज, क्या आप रुष्ट हो रहे हैं।

राणा—नहीं, महाराणी मैं विचार कर रहा हूँ·····

(एक दासी आती है)

दासी—घड़ी खम्मा अन्नदाता, रावल रत्नसिंह जी ड्योढ़ियों पर हाज़िर हैं।

रानी—उन्हे यहीं ले आ। (राणाजी से) रत्नसिंह को मैं जयसिंह से किसी भाँति कम नही समझती। वह बड़ा विनयी, वीर और सुशील है।

(रत्नसिंह आता है)

रत्नसिंह—अन्नदाता की जय हो। सेवक को क्या आज्ञा है ?

रानी—तुमने सलूम्बरा का ठिकाना क्या राव केसरीसिंह को सौंप दिया ?

रत्नसिंह—अभी नहीं राणी जी ।

रानी—क्यों ? दरबार ने तो उसका पट्टा उनके नाम कर दिया है । इसमें विलम्ब क्यों ?

रत्नसिंह—घणी खम्मा, रानी मा, राजाज्ञा पालने मे मेरी ओर से देर नहीं हुई । मैं स्वयं राव केसरीसिंहजी के पास यह कहने गया था कि वे ठिकाना दखल करलें ।

रानी—राव जी ने क्या कहा ?

रत्नसिंह—उन्होने कहा, सलूंबरा ठिकाना चूड़ावतों का है, चूड़ावत मेवाड़ की गद्दी के रक्षक और प्रतिपालक हैं । उनके ठिकाने पर मैं अधिकार नही कर सकता ।

राणा—क्या रावजी ने यह कहा ?

रत्नसिंह—जी हाँ, दरबार । मैंने बहुत समझाया, परन्तु वे ठिकाना दखल ही नहीं करते ।

राणा—रत्नसिंह, क्या यह सच है कि रावत रघुनाथसिंह दिल्ली बादशाह के पास चले गये हैं ।

रत्नसिंह—हां, महाराज ।

राणा—बिना ही मेरी आज्ञा के ।

रत्नसिंह—हाँ महाराज ।

राणा—किस लिये ? बिना मेरी आज्ञा के क्यों ?

रत्नसिंह—उन्होने आवश्यकता नहीं समझी महाराज ।

राणा—यह राजविद्रोह है। मैं उन्हे इसका दण्ड दूँगा।

रत्नसिंह—यह राजविद्रोह नहीं—आत्म सम्मान है दर्बार! दण्ड देना न देना आपकी मर्जी है।

राणा—मेरा सर्दार विना मेरी आज्ञा कैसे जा सकता है।

रत्नसिंह—जब श्रीमानो ने जागीर जब्त करली तब वे सर्दार कहाँ रहे? जहाँ आजीविका होगी वहीं वे रहेगे।

राणा—रघुनाथसिंह अजीविका के लिये देश से वाहर गये हैं?

रत्नसिंह—हाँ दर्बार।

राणा—और तुम? तुम क्या करोगे?

रत्नसिंह—मैं, महाराज! यहीं मेवाड़ में एक मुट्ठी अन्न प्राप्त करने की चेष्टा करूँगा।

राणा—और तुम्हारी यह तलवार!

रत्नसिंह—इसकी जब आवश्यकता होगी। तव यह अपना जौहर दिखायेगी।

रानी—सुना महाराज, अपने सेवकों के विचार।

राणा—सुना! (आगे बढ़कर रत्नसिंह को छाती से लगाकर) वीरवर तू धन्य है। सलूंवर ठिकाना तुम्हारा है। मैं रावत रघुनाथसिह को लाने को दूत भेजूंगा।

रत्नसिंह—(राणा के चरण छूकर) दर्बार! यह तलवार, यह प्राण, यह शरीर सव स्वदेश पर न्यौछावर है।

राणा-रानी—धन्य वीर, धन्य रत्नसिंह!

(पर्दा गिरता है)

सातवाँ दृश्य

(स्थान—दिल्ली। लाल क़िले का भीतरी भाग। इबादतगाह का कमरा। बादशाह अकेला घूम रहा है। समय—प्रातः)

बादशाह—(स्वगत) आज उस ख़ौफनाक वक्त को ६ साल गुज़र गये। जब समूगढ़ के मैदान मे दारा की फ़ौज के मैंने धुर्रे उड़ा दिये थे। बदनसीब दारा, अपने सामने किसी को न लगाता था, आख़िर कुत्ते की मौत मारा गया। आज भी वे ख़ौफनाक आँखें नहीं भूलतीं—जब उसका सिर काटकर मेरे सामने पेश किया गया था। पहिले मुझे यकीन ही न हुआ कि यह दारा का सिर है। मगर फिर मैंने पहचाना—वह दारा था—वही, जो बचपन में······ ओफ! उन बातों को याद करना बेवकूफी है। इसके बाद, मुराद—बेवकूफ शराबी और अपनी तलवार पर इतराने वाला, गोया वह शाहज़ादा नहीं सिपाही था, आज अपनी करनी को पहुँचा। और इसके बाद तमाम काँटे चुन चुन कर कुचल डाले गये। यह सारा लम्बा अर्सा एक ख़ौफनाक सपने की तरह जद्दोजहद मे बीत गया। अब मैं तख्ते ताऊस पर बैठकर कुमारी कन्या से हिमालय की चोटियो तक और काबुल से समन्दर की लहरो तक हुकूमत करता

हूँ। आज मैं दुनिया का सब से बड़ा बादशाह हूँ। मेरी ताकत का मुकाबिला कौन कर सकता है। फिर अब इस फकीरी बाने की क्या ज़रूरत है? यह ढोंग तो अब ढोया नहीं जाता। मै बादशाह आलमगीर हूँ। बादशाहत एक चीज़ है और फकीरी दूसरी। मगर अभी दो काँटे मेरी आँखो मे खटक रहे है। एक ये मुल्ला क़ाज़ी और दूसरे खूंख्वार राजपूत। मुझे दोनों से नफ़रत है। ये मुल्ला। अक़्ल के दुश्मन, भुक्खड़ और दुनिया से अन्धे होते है। मगर रियाया के दिलों पर इनकी हुकूमत है। इन्हे अपनाना मस्लहत है। मैं चाहता हूँ कि वे लोग समझे कि मैं पैग़म्बर हूँ। मगर ये राजपूत? ये कुछ और ही तराश के जानवर हैं। कम्बख्तों के दिल मे खौफ की तो जगह ही नहीं है। इनके लिये मरना और मारना महज़ खेल है। (कुछ सोच कर) पहरे पर कौन है?

(एक खोजा आता है)

बादशाह—वज़ीर असदुल्ला को अभी हाज़िर कर।

खोजा—(कोर्निस करके) जो हुक्म खुदावन्द। (जाता है)

बादशाह—(दोनों हाथों से मुट्ठी मलता हुआ) यह तो सच है कि आला हज़रत ने और जन्नत नशीन बादशाह जहाँगीर ने हिन्दुओ से मिलकर राजपूतो की मदद से हिन्दुस्तान पर हुकूमत की थी मगर आज वक्त बदल गया

है। हिन्दुस्तान के इस ,सिरे से उस सिरे तक दीने इस्लाम का सितारा बुलन्द है। मैं चाहता हूँ कि मुल्क मे दीन की इज्जत बढ़ाई जावे।

(वजीर असदुल्ला आते हैं)

बादशाह—जोधपुर की रानी गिरफ्तार हुई ?

वज़ीर—हुजूर, वह कुछ राजपूतो के साथ बचकर भाग गई। बाकी आदमी काट डाले गये। औरते जल मरी।

बादशाह—कौन उसे गिरफ्तार करने गया था ?

वज़ीर—फौजदार तहव्वर खॉ गये थे जहॉपनाह।

बादशाह—और उनके साथ कितनी फ़ौज थी।

वज़ीर—पॉच हजार खुदावन्द।

बादशाह—राजपूत कितने थे ?

वज़ीर—ठीक अर्ज़ नही कर सकता। कोई कहते हैं दो सौ थे, कोई कहते हैं पचास थे।

बादशाह—(गुस्से से) और उन्हे लेकर रानी ५ हज़ार शाही फौज़ को कुचल कर चली गई।

वज़ीर—जहॉपनाह, देखने वाले कहते हैं कि ऐसा नज़ारा कभी न देखा था। जब रानी बच्चे को पीठ पर बॉध दोनों हाथों से तलवार घुमाती शाही फौज को चीरती हुई चली गई। हुजूर! लोग सक्के की हालत मे आगये।

बादशाह—शर्म की बात है! जसवन्त का लड़का गिरफ्तार हुआ ?

वज़ीर—जी हाँ खुदावन्द ।

बादशाह—उसे इसी जुम्मे को मुसलमान कर लिया जाय और उसका नाम मुहम्मदीराज रखा जाय । उसे इस्लामी तालीम देने की तमाम ज़रूरी कार्यवाहियाँ की जायँ ।

वज़ीर—जो हुक्म जहाँपनाह ।

बादशाह—रानी कहाँ गई है । कुछ पता लगा ?

वज़ीर—वह उदयपुर के राना राजसिंह की पनाह मे गई है ।

बादशाह—(त्योरियों में बल डालकर) राना राजसिंह की तो और भी शिकायतें है ?

वज़ीर—जहाँपनाह, खबर मिली है कि उसने वे तमाम इलाके दखल कर लिये है जो आला हज़रत ने दख़ल कर लिये थे और चित्तौर के किले की मरम्मत जो शाही सुलहनामे ख़िलाफ होने से गिरा दी गई थी फिर से करली गई है ।

बादशाह—(सोचकर) बहतर । इस मसले पर फिर ग़ौर किया जायगा । क्या मुल्ला और उल्मा आये हैं ।

वज़ीर—जी हाँ खुदावन्द, वे सब कदमबोसी के लिए मुन्तजिर खड़े है ।

बादशाह—उन्हे यहाँ भेज दो और जसवन्तसिंह के इस लड़के का .खूब ख़याल रखो ।

वज़ीर—जो हुक्म । (वज़ीर जाता है । सब लोग आते हैं ।)

बादशाह—आइये मौलाना ! ऐ सच्चे दीनदारो, रसूले पाक ने इस नाचीज़ को काफिरों के इस मुल्क का बादशाह बनाया। सो इसलिए कि दीने इस्लाम का झण्डा हिन्दुस्तान में बुलन्द रहे। अब मेरे सच्चे दोस्तो ! आप बताइये कि कैसे यह सवाब का काम अंजाम दिया जा सकता है।

एक मुल्ला—जहाँपनाह ! ख़ुदा का शुक्र है कि हुज़ूर के खयालात दीने इस्लाम की हिफाजत और बहबूदी की ओर हैं। इस सवाब के बदले ख़ुदा आपको जन्नत न दे तो मैं ज़ामिन हूँ।

बादशाह—मै चाहता हूँ कि तमाम मुल्क में दीने इस्लाम की रोशनी फैलाने के लिये बुतपरस्ती का ख़ात्मा कर दिया जाय। इसलिये हमने तमाम सल्तनत में हुक्म जारी किये हैं कि जहाँ जो पुराना मन्दिर हो तोड़ डाला जाय और उस जगह पाक मस्जिद बना दी जाय।

दूसरा मुल्ला—वल्लाह ! क्या सवाब का काम किया है हुज़ूर ने।

तीसरा—जहाँपनाह सचमुच औलिया है।

बादशाह—मैं एक अदना दीन का ख़ादिम हूँ। हाँ, तो इस हुक्म की तामील सख़्ती से हो रही है और उसे और मुस्तैदी से अमल में लाने के लिये मैंने एक महकमा ही कायम कर दिया है।

सब—सुभान अल्लाह ! सुभान अल्लाह !! जहाँपनाह ने बहुत ही मुनासिब काम किया है।

बादशाह—मैंने तमाम काफिर राजपूतो और हिन्दुओं को जिम्मेदार जगहों से हटाकर, उनकी जगह दीनदारों को दी हैं।

सब—ऐसा ही होना चाहिये।

बादशाह—अब आप लोग कहिये कि दीने इस्लाम की बहतरी के लिये और क्या किया जा सकता है।

एक मुल्ला—हुजूर, शरअ की मन्शा है कि तमाम हिन्दुओं पर जज़िया लगाया जाय। जैसा कि पठान बादशाहों ने हिन्दुओं पर लगाया था। इससे दीन की तरक्की होगी और ख़ज़ाना भी बढ़ेगा।

बादशाह—इस मसले पर भी ग़ौर किया जा रहा है। मगर हमें ख़याल है कि राजपूत और हिन्दु रईस इससे बिगड़ जायेगे।

मुल्ला—मगर जहाँपनाह, जो खुदा से ख़ोफ खाते हैं, इन मक्कार राजपूतों से डर जाने वाले नहीं हैं। जजिया का हुक्म तो जरूर जारी होना चाहिये।

बादशाह—बहतर, मैं जल्द ज़जिया का हुक्म जारी करूँगा। अब आप लोग जा सकते हैं।

सब मुल्ला—शुक्रिया ! अब हमने समझा कि जहाँपनाह ओलिया है। हम खुदा से दुआ करते है कि जहाँपनाह के

कदम तख्ते मुग़लिया पर दीने इस्लाम के लिये मुबारक हों। (जाते हैं)

बादशाह—सल्तनत एक बोझा है और बादशाह उसे ढोने वाला गधा। ये दीन के अन्धे मुल्ला सबसे ज्यादा खतरनाक हैं। मगर इनसे ज्यादा वे मग़रूर राजपूत हैं.....जो हर तरह बर्बाद होने पर भी अपनी अकड़ छोड़ना नहीं जानते। उदयपुर का राजा एक अँगारा है। अगर जोधपुर के राठौर उससे मिल गये तो सल्तनत के लिये खतरनाक तूफान खड़ा करेंगे। एक बार अजमेर की ज्यारत के बहाने इनको देखना होगा।

(बड़बड़ाता हुआ जाता है)

आठवाँ दृश्य

(स्थान—रूपनगर का अन्तःपुर । कुछ सहेलियाँ बाग़ में झूल रही हैं और गा रही हैं । सावन की बहार है । समय—प्रातःकाल)

राग-झिंझोटी

सखि झूलो और झुलाओ ।
शीतल पवन चलत पुरवैया ।
झुक झूमत तरु डार पात—
झरत-झरत रिमझिम रिमझिम
सखि रोम-रोम हर्षाओ सखि झूलो० ॥ १ ॥
क्षण में धूप क्षणेक में बादल ।
क्षण में बिजली क्षण में रिमझिम ।
ऋतु मनमोहन पावस आई
मन उमंग उमगाओ । सखि झूलो० ॥ २ ॥
हँस हँस पैंग बढ़ाओ सजनी ।
गाओ राग जगाओ सजनी ।
प्रेम ज्योति के जगमग दीपक ।
उर में आज जलाओ । सखि० ॥ ३ ॥

(परस्पर बातें करती हैं)

एक—सुनोरी सखी, आओ आज हम राजकुमारी को ख़ूब छकावें।

दूसरी—क्या करेगी री तू ?

पहिली—मैं कहूँगी कि राजकुमारी को ब्याह की फिक्र हो रही है।

तीसरी—ख़ूब मज़ा रहेगा। फिर हम पूछेंगी-उन्हें कौनसा दूल्हा पसन्द है।

पहली—उनका दूल्हा मेरे मन मे है, पर बताऊँगी नहीं।

दूसरी—बता दे सखी।

पहिली—नहीं बताऊँगी। हम सब जनी मिलकर उन्हीं से पूछेंगी। उन्हें ख़ूब तंग करेंगी।

दूसरी—ख़ूब दिल्लगी रहेगी। सुन-(कान में कुछ कहकर) क्यों ? है न यही बात।

पहिली—दूर हो पगली, ऐसा भी कहीं हो सकता है ! चुप, वह दासी आ रही है।

(दासी आती है)

दासी—एक बुढ़िया राजकुमारी से मिलने की बड़ी देर से हठ ठान रही है। मैंने बहुत कहा, आज कुमारीजी व्रत कर रही हैं। मुलाकात नहीं होगी। पर सुनती ही नहीं। (हँसकर) उसने मुझे घूँस मे यह सुर्मे की शीशी दी है।

एक सहेली—क्या करामात है इस सुर्मे मे ? देखूं—

दूसरी—इसे आँख मे लगाने से एक के दो दीखते हैं।

तीसरी—तब तो बहुत अच्छा है, एक शीशी मैं भी लूंगी।

दासी—उस बुढ़िया को क्या कह दूँ ?

पहिली—यह तो कह, वह है कौन ?

दासी—मुसलमानी है ? दिल्ली से आई है, मिस्सी, सुर्मा और तस्वीरें बेचती है। कहती है राजकुमारी के लिए तस्वीरें लाई हूँ ?

पहिली—अरी उसका रंग-रूप कैसा है ?

दासी—मुँह में एक दाँत नहीं, चहरे पर लकीरें ही लकीरें, आँखों मे सुरमा और मुँह मे पान।

पहिली—अरे वाह, उसके यह ठाठ। यहां भेज दे उसको ज़रा। दिल्लगी ही रहेगी।

दासी—बहुत अच्छा। (जाती है)

पहिली—ज़रा दिल्ली का हाल-चाल ही जाना जायगा। सुना है मुआ नया बादशाह बड़ा काँइयाँ है।

दूसरी—हत्यारा, भाइयों के सिर काटकर तख्त पर बैठा है।

पहिली—चुप, वह आ रही है शैतान की नानी।

(बुढ़िया आती है)

एक—बुड्ढी तेरे पोपले मुँह में कितने दाँत हैं ?

बुढ़िया—बेटी मैं दिल्ली रहती हूँ।

दूसरी—दिल्ली में बिल्लियाँ बहुत हैं ?

बुढ़िया—मैं तस्वीरें बेचती हूँ, मेरा बेटा मुसौव्वर है।

पहिली—तू पत्थर है, दिखा कैसी तस्वीरें हैं।

बुढ़िया—(सब को घूर कर) मगर मेरी तस्वीरें तुम्हारे लायक़ नहीं हैं, वह राजकुमारी के लिए लाई हूँ ।

(सब ज़ोर से खिलखिलाकर हँसती हैं)

बुढ़िया—तुम हँसती क्यों हो ?

एक—हँसी की बात ही है (आगे बढ़कर) मैं राजकुमारी हूँ-दिखा तस्वीर ।

दूसरी—दूर हो राजकुमारी मैं हूँ, कहाँ है तस्वीरें ।

तीसरी—इधर देख मैं हूँ राजकुमारी ।

बुढ़िया—(रोकर) या खुदा या तो ये सभी राजकुमारियाँ हैं या एक भी नहीं ।

(सब खिलखिला कर हँसती हैं । राजकुमारी चारुमती आती है—सब सखियाँ चुप हो जाती हैं)

कुमारी चारुमती—तुम सब इतना क्यों हँस रही हो ।

एक—यहाँ एक दिल्ली की बूढ़ी बिल्ली आई है ।

कुमारी—बेचारी बुढ़िया को तंग न करो–कौन है वह ?

एक सखी—वह दिल्ली की तस्वीर बेचने वाली है । चुड़ैल कहती है तस्वीरें हमारे लायक नहीं—कुमारी जी के लिये है ।

चारुमती—(मुस्करा कर) मेरे लिये जो तस्वीर लाई हो दिखाओ ।

बुढ़िया—मैं कुर्बान । कुमारीजी, तुम तो खुद ही एक तस्वीर हो ।

चारुमती—तुम अपनी तस्वीरें तो दिखाओ ।

बुढ़िया—देखो—ये अकबर, जहांगीर, शाहजहाँ, नूरजहाँ की तस्वीरें हैं।

चारुमती—क्या तुम्हारे पास हिन्दू राजा रानियो की तस्वीरें नहीं हैं ?

बुढ़िया—जी हाँ है। राजा मानसिंह, जगतसिंह और जयसिंह की तस्वीरें है देखिये।

(निकाल कर देती है)

कुमारी—ये हिन्दू राजाओ की तस्वीरें नहीं हैं, बादशाह के नौकरो की हैं।

बुढ़िया—(और तस्वीरें निकाल कर) यह राणा प्रतापसिंह, अमरसिंह, करनसिंह, जसवन्तसिंह की तस्वीरें हैं।

चारुमती—हाँ, इन्हे रख दो, इन्हे मैं मोल लूँगी। वह कौन तस्वीर तुमने छिपाली ?

बुढ़िया—माफ कीजिये राजकुमारी! वह तुम्हारे दुश्मन की तस्वीर है।

चारुमती—किसकी है देखूँ ?

बुढ़िया—उदयपुर के राना राजसिंह की है। वे तुम्हारे पिता के वैरी है।

चारुमती—वीर राजपूत स्त्रियों से वैर नहीं करते। यह तस्वीर मैं मोल लूँगी। (सखियों से) सखियो, देखो, यह एक सच्चे राजपूत की तस्वीर है। (बुढ़िया से) और किस-किस की तस्वीरें हैं।

बुढ़िया—देखिये—यह आलमगीर बादशाह की तस्वीर है।

चारुमती—अजब तस्वीर है। मैं इसे जूते की नौक पर मारती हूँ।

बुढ़िया—खामोश, अगर बादशाह सुन पावेंगे तो रूपनगर के किले की एक ईंट तक न मिलेगी।

चारुमती—यह बात है? सहेलियों, इस तस्वीर पर बारी-बारी से एक-एक लात मारो।

(सब बारी-बारी से लात मारती हैं)

चारुमती—जिसने अपने सगे भाइयो के रक्त से हाथ रँगे, और अपने बूढ़े बाप को कैद कर के तख्तेताऊस पर अशुभ चरण रख मुगलो के इतिहास को कलंकित किया है, उसकी एक राजपूतनी यही प्रतिष्ठा कर सकती है। लो बीस मुहर दाम और बीस मुहर इनाम। जाओ।

(बुढिया हक्का-बक्का हो कर जाती है; सहेलियाँ दंग रह जाती हैं)

(पर्दा गिरता है)

दूसरा अङ्क

पहिला दृश्य

(स्थान—दिल्ली की जामा मस्जिद के सामने का मैदान। मस्जिद में जुमे की नमाज की धूमधाम हो रही है। आम रास्ते पर बहुत से हिन्दुओं की भीड़ इकट्ठी हो रही है। घुड़सवार सिपाही भीड़ हटाना चाहते हैं। समय—प्रातःकाल)

एक सिपाही—(एक नागरिक से) कौन हो जी तुम ?

नागरिक—क्या मैं ? यह तो तुम अन्दाज से ही जान सकते थे—मेरे एक नाक, दो कान, एक मुँह, दो हाथ, दो पैर हैं, जैसे कि तुम्हारे हैं।

सिपाही—हम पूँछते हैं जी कि तुम क्या काम करते हो ?

नागरिक—बहुत से काम करता हूँ। टेढ़ों को सीधा करता हूँ। सीधों को झुका देता हूँ। तुम्हारा कुछ काम हो तो कहो।

सिपाही—रहते कहाँ हो ?

नागरिक—इसी शहर में।

सिपाही—हिन्दू कि मुसलमान।

नागरिक—हिन्दू।

सिपाही—तो चलते फिरते नज़र आओ।

नागरिक—क्यों ? किसलिये।

सिपाही—हुक्म नहीं है।

नागरिक—क्यों हुक्म नहीं है।

सिपाही—बहस करता है ! बदज़ात !

नागरिक—गाली मत देना, ख़बरदार ! जानते हो मैं टेढ़ों को सीधा......

सिपाही—(धक्का देकर) तो ले—हो सीधा....

(दोनों में गुत्थमगुत्था होती है भीड़ इकट्ठा हो जाती है)

एक—क्या मामला है, क्या झमेला है ?

नागरिक—मिया जी कहते हैं चलते फिरते नज़र आओ—गाली देते हैं और गर्दन नापते हैं।

दूसरा—अन्धेर है अन्धेर, गाली क्यों दी जी !

तीसरा—और हाथापाही क्यों की ?

चौथा—यह तो अन्धेरगर्दी !

पाँचवाँ—बीच बाज़ार यह ज़ुल्म !

सिपाही—यहाँ यह क्यों खड़ा था।

नागरिक—सड़क पर खड़े थे, सड़क किसी के बाप की नहीं है।

दो चार आदमी—बेशक, रास्ते पर लोग चलने फिरने भी अब न पावेंगे।

सब—अन्धेर है, अन्धेर !

सिपाही—हुक्म नहीं है, हुक्म।

एक—हुक्म क्यों नहो है?

सिपाही—जहाँपनाह की सवारी जुमे की नमाज़ अदा करने को आ रही है, तुम गधे हो।

दूसरा—(भीड़ में से) गधे तुम हो। हम बादशाह सलामत से अर्ज़ करने आये हैं।

सिपाही—किसने हमें गाली दी। उसे हम गिरफ्तार करेंगे। पकड़ो उसे।

दो चार नागरिक—गाली तुमने दी तुमने।

(१०।२० आदमी और इकट्ठे हो जाते हैं)

सब—क्या हुआ? क्या हुआ?

दो चार—हंगामा हो गया—जुल्म है जुल्म।

दो चार और—अन्धेर है अन्धेर।

कुछ लोग—क्या हुआ भाई, क्या हुआ।

एक—यह सिपाही कहता है यहाँ से हट जाओ।

दो चार—क्यों हट जायँ। हम यहीं जमे रहेंगे।

एक—हम जहाँपनाह से अर्ज़ करने आये हैं। अर्ज़ बिना किये नहीं हटेंगे।

दो चार—हम अपनी जान देंगे।

(एक अफसर घोड़ा दौड़ाता आता है)

अफसर—यह क्या हंगामा है?

सिपाही—ये सरकश बाग़ी लोग इकट्ठे हो रहे हैं।

सब लोग—हम नागरिक हैं। हम जहाँपनाह से अर्ज करने आये हैं।

सिपाही—इन्होंने बादशाह सलामत को गाली दी है। ये सब फसाद करने को आमादा हैं। ये सब बागी हैं।

सब—हम बादशाह सलामत से अर्ज करेंगे।

अफसर—तुम सबको तोप के मुँह पर उड़वा दिया जायगा।

सब—हम अपनी जान हथेली पर धरे हुए हैं। हम मर मिटेंगे पर अर्ज किये बिन न जायेंगे।

(किले से तोपों की सलामी दागी जाती है)

अफसर—तुम सब लोग भाग जाओ, जहाँपनाह जुमे की नमाज अदा करने तशरीफ ला रहे हैं।

सब—हम हजरत सलामत से अर्ज करेंगे। हम········

अफसर—(सवारों से) घोड़े छोड़ दो और रौंद डालो बदमाशों को।

(घोड़ों से कुचले जाकर कुछ लोग चिल्लाते हैं। बादशाह की सवारी आती है। नकीब चिल्लाते हैं)

नकीब—(उच्च स्वर से) रास्ता करो–रास्ता करो–हटो–बचो।

सब—दुहाई खुदावन्द। हमारी अर्ज सुनी जाय। हम गरीब हिन्दू जजिया नहीं दे सकते।

एक—जजिया हमारे बाप-दादों ने भी कभी नहीं दिया।

दूसरा—जन्नत नशीन जलालुद्दीन अकबर शाह ने उसे माफ कर दिया था। उसके बाद बादशाह जहाँगीर ने और आला हजरत शाहेजहाँ ने भी उसे माफ़ रखा था।

सब—(चिल्ला कर) जज़िया माफ किया जाय। हम नहीं दे सकते-हम नहीं देंगे।

नकीब—हटो-बचो-रास्ता साफ करो।

कुछ लोग—सड़क पर लेट जाओ। हम अर्जी बिना मंजूर किये न हटेंगे। (बहुत से लोग सड़क पर लेट जाते हैं.)

बादशाह—यह क्या हंगामा है।

वजीर—हुजूर शहर के हिन्दू जमा हैं।

बादशाह—(त्योरियों में बल डालकर) किस लिये ?

बजीर—जजिया के खिलाफ जहाँपनाह की खिदमत में अर्ज करने।

बादशाह—उन्हे रास्ते से हटाओ।

वजीर—वे रास्ते पर लेट गये हैं। वे कहते हैं हम अर्जी कुबूल कराकर हटेंगे।

बादशाह—(क्रुद्ध स्वर से) उन पर मस्त हाथियों को छोड़ दो।

(भीड़ पर मस्त हाथी छोड़े जाते हैं। लोग कुचले जाकर चीखते चिल्लाते रोते पीटते भागते हैं। बहुत से मारे जाते हैं)

दूसरा दृश्य

(स्थान—उदयपुर । समय—मध्यान्ह । महाराणा राजसिंह का दर्बार । महाराणा गद्दी पर विराजमान हैं । ख़ास-ख़ास सरदार अपने-अपने स्थानों पर बैठे हैं । राठौर दुर्गादास और सैनिक सामने खड़े हैं)

राणा—(शोक पूर्ण स्वर से) तो जोधपुर आज अनाथ हुआ । राठौरपति जसवन्तसिंह अब नहीं है ?

दुर्गादास—हाँ महाराणा, अपने देश और मित्रों से दूर जमरुद के किले में उन्होंने वीर प्राण त्यागे ।

राणा—एक नरवर उठ गया । (सिर झुका लेते हैं)

दुर्गादास—हम लोग—महाराज ! राणियों और राजपरिवार के सहित मारवाड़ लौट रहे थे । लाहौर में हमें रुकना पड़ा । रानी मां ने वहाँ कुँवर को जन्म दिया ।

राणा—जोधपुर का यह भावी राजा चिरंजीवी हो ।

दुर्गादास—अन्नदाता का आशीर्वाद सफल हो । परन्तु हमारी दुर्दशा की कहानी अत्यन्त करुण है ।

राणा—कहो ठाकुर, मेवाड़ राठौर राजवंश की हर विपत्ति में उसके साथ रहेगा ।

दुर्गादास—महाराणा की जय हो । इसी आशा से मैं शरण आया हूँ । लाहौर में हमें ख़बर मिली कि इधर महाराज का स्वर्गवास हुआ और उधर दिल्ली में पाटवी कुँवर पृथ्वीसिंह मार डाले गये ।

राणा—(आश्चर्य से) है ! मार डाले गये ?

दुर्गादास—(आँसू भरकर) हाँ महाराणा, बादशाह ने उन्हे दर्बार मे बुलाकर खिलत दी थी वह विष में रंगी थी। कुमार खिलत पहन घर लौट रहे थे-मार्ग ही मे उनका प्राण निकल गया।

राणा—पिता को कैद करने और भाइयों को क़त्ल करने वाला क्रूर बादशाह जो न करे सो थोड़ा।

दुर्गादास—यह वज्र के समान खबर सुनकर भी हमने नवशिशु के जन्म पर सन्तोष किया, पर हमें तुरन्त ही खबर मिली कि लावारिस होने के कारण जोधपुर खालसा कर लिया गया है। राणियों और राज परिवार को लेकर हमे दिल्ली हाजिर होना चाहिये।

राणा—यह किसलिए ठाकुर ?

दुर्गादास—बादशाह को विश्वास नही हुआ कि रानी को और कुँवर जन्मा है, वह उसकी तस्दीक किया चाहता था।

राणा—अवश्य इसमे कोई गूढ़ उद्देश्य होगा।

दुर्गादास—ऐसा ही था महाराज ! दिल्ली जाकर हम रूपनगर की हवेली मे ठहरा दिये गये। वहाँ जाते ही शाही सेना ने हमे घेर लिया और बलपूर्वक कुमार को माँगा। अन्त मे हमे प्राणो पर खेलना पड़ा। कुमार को किसी भाँति बचा कर हम मुग़ल सैन्य की छाती पर पैर रख निकल भागे। महाराणा, इस विपत्ति

समुद्र से मैं, मुकुन्ददास, सोनिंग और महारानी बचीं। शेष सब कट मरे-राजवर्ग की सब स्त्रियाँ वहीं जल कर खाक हो गईं। पर कुँवर की रक्षा हो गई।

राणा—(क्रोध और आवेश में) धन्य शूर, धन्य वीर। कुमार और रानी अब कहाँ हैं।

दुर्गादास—अन्नदाता की शरण में।

(सोनिंग को संकेत करता है। वह कुमार शिशु को लाकर राणा की गद्दी पर डाल देता है)

राणा—(तलवार छूकर) शरणागत को अभय। ठाकुर दुर्गादास, जब तक मेवाड़ में एक भी वीर तलवार पकड़ने योग्य है तब तक मारवाड़ का यह भावी अधीश्वर मेवाड़ की छत्रछाया में फले-फूले।

दुर्गादास—महाराणा की जय हो। महाराज (बालक को गोद में उठा लेता है) मारवाड़ के अनाथों पर आपने बड़ी कृपा की।

राणा—कृपा नहीं दुर्गादास, यह तो धर्मपालन है। जो राजा धर्म का पालन न करे, शरणागत को विमुख करे वह अधर्मी है। बादशाह आलमगीर ने प्रारम्भ ही से अनर्थ किया है। उसका राज्यारोहण रक्तपात और अन्याय से हुआ है। जिस मुग़ल साम्राज्य की जड़ राजपूतों की तलवारों को खरीद कर अकबर, जहांगीर

और शाहजहाँ ने मज़बूत की—उसे यह आलमगीर खोखली कर रहा है। राजपूताने की जिस वक्त सोई हुई आत्मा जाग उठेगी मुग़ल तख्त भस्म हो जायगा।

दुर्गादास—महाराणा! दुर्भाग्य से राजपूताना सो रहा है। आत्म-सम्मान और संगठन के भाव उसने भुला दिये है। इसी से उसकी वीरता मे कारिख लग गई है। इसे जगाना होगा। महाराज! आप हिन्दु-पति हैं। आपकी ओर तमाम राजपूताने की दृष्टि है। राठौरों की बांह आपने गही है। राठौरों की तलवारें आपके चरणो में है।

राणा—वीरवर, निश्चय रखो। राठौर और सीसोदियो की शक्ति मिलकर मुग़ल साम्राज्य का विध्वंस कर देगी। परन्तु अभी हमें समय की प्रतीक्षा करनी होगी। हाँ, महा-राणी अब कहाँ हैं। मेवाड़ के राजमहलों की यदि वे शोभा बढ़ावेंगी तो यह मेवाड़ का सौभाग्य है।

दुर्गादास—धन्यवाद, महाराणा! रानी मा और हम लोग अब मारवाड़ को जगावेंगे। हम घर-घर अलख जगावेंगे। हम विपत्तियों की पहाड़ियों को चकनाचूर करेंगे। जब तक हमारा प्यारा जोधपुर स्वाधीन न हो जायगा।

राणा—धन्य वीर, धन्य राठौर! अभी मैं जोधपुर के भावी अधि-पति के गुज़ारे के लिए १२ गांवों सहित केलवे का पट्टा लिख देता हूँ।

दुर्गादास—महाराणा की जय ! अब हमें आज्ञा हो तो देश प्रेम और देशभक्ति के जोग साधने को हम घर-घर अलख जगावें और ऐसा सरंजाम करें जिससे मुग़ल तख्त एक दिन जल कर राख हो जाय।

राणा—जाओ वीरवर ! समय पर यह अवश्य होगा।

(परदा गिरता है)

तीसरा दृश्य

(स्थान—दिल्ली का रंगमहल। शाहजादी जेबुन्निसा का खास कमरा। समय—प्रातःकाल। शाहजादी जेबुन्निसा अकेली अस्तव्यस्त अपने कमरे में बैठी है।)

शाहजादी—(स्वगत) रुए ज़मीन के इस वहिश्त की–जहां हवा को भी विना हुक्म अन्दर आने की ताब नहीं, आज मैं मलिका हूँ। अब्बा पर रोशनआरा के बड़े-बड़े अहसान हैं।' कुछ दिन इसी से उसने रंग महल पर हुकूमत की। बादशाह आलमगीर नहीं रोशनआरा बेगम हैं। मगर वे दिन लद गये। मेरी बेचारी तीन बहनों की क़िस्मतें अब्बा ने मेरे बदकिस्मत चचाज़ात कैदी भाइयों के साथ शादी करके बांध दी। मगर मैं वह पंछी नहीं जो कैद होकर रहूँ। बसन्त में भौंरा नये-नये फूलों का रस लेता है, गूंजता है, वह कैसा प्यारा लगता है। मगर इस अटूट दरिया के न थमने वाले बहाव का अंजाम क्या होगा? (कुछ सोचकर) क्या परवाह है, मैं जेबुन्निसा हूँ, मुग़ल बादशाहों के इस रंगमहल की रानी मैं हूँ।

(बांदी आती है)

बांदी—हज़रत बेगम साहेबा, बी फितरत हुज़ूर की कदमबोसी की ख्वास्तगार है।

शाहजादी—जहन्नुम मे जाय वह बांदी। अभी मुलाकात नहीं होगी। वह आईना इधर कर।

बांदी—(आईना सामने करके) ख़ुदाबन्द ! वह कहती है राजपूताने से बढ़िया सुर्मा आया है।

शाहजादी—(चौंककर) यह तो अच्छी खबर मालूम देती है, कौन है वह।

बांदी—हुजूर फितरत।

शाहजादी—उसे यहीं भेज दे।

बांदी—जो हुक्म।

(जाती है)

जेबुन्निसा—(स्वगत) फितरत काम की ख़बर लाती है। देखूं, इस बार क्या ख़बर लाई है। यह राजपूताने का सुर्मा क्या माने ? (कुछ सोचकर) राजपूताना ! अजब वह शत है इस नाम मे।

(फ़ितरत आकर ज़मीन चूमती है)

शाहज़ादी—इस वक्त क्यों आई शैतान।

फितरत—हुजूर काम की खबर है।

शहज़ादी—कह।

फितरत—जो बख्शीश दें तो कहूँ।

शाहज़ादी—कह न।

फ़ितरत—मैं राजपूताना से आ रही हूँ, रूपनगर गई थी।

शाहज़ादी—(त्योरियों में बल डालकर) फिर ?

फ़ितरत—मेरे पास तस्वीरें थी, वे मैंने वहाँ की राजकुमारी को दिखाईं।

शाहज़ादी—कौन २ तस्वीरें थीं।

फ़ितरत—सभी बादशाहों की थीं हुज़ूर !

शाहज़ादी—ख़बर क्या है ?

फ़ितरत—एकदम गुस्ताख़ाना फेल।

शाहज़ादी—कह बदज़ात।

फ़ितरत—(हाथ जोड़कर) ख़ुदावन्द ! मेरे पास हज़रत पीर दस्त-गीर आलमगीर की तस्वीर थी, वह मैंने राजकुमारी को दिखाई थी।

शाहज़ादी—शिजदा किया उसने।

फ़ितरत—तोबा-तोबा ! हुज़ूर उसने तस्वीर की तौहीन की।

शाहज़ादी—क्या किया ?

फ़ितरत—वह कल्मा ज़बान पर नहीं ला सकती।

शाहज़ादी—तो तुझे कुत्तों से नुचवाऊँ ?

फ़ितरत—(गिड़गिड़ा कर) हुज़ूर शाहज़ादी ! ग़ुलाम की जान बख़शी जाय तो अर्ज करूँ।

शाहज़ादी—कह फिर, हरामज़ादी।

फ़ितरत—उस मग़रूर काफिर लड़की ने हज़रत की तस्वीर पर लात मारी।

शाहज़ादी—(चौंककर) लात ?

फ़ितरत—और यही उसकी सहेलियों ने किया।

शाहज़ादी—(होठ चबाकर) फिर !

फ़ितरत—हुज़ूर, मैं अपनी जान लेकर भागी।

शाहज़ादी—(सोचकर) खूबसूरत है वह ?

फ़ितरत—क्या कहूँ हुज़ूर, तस्वीर की मानिन्द।

शाहज़ादी—सिन क्या है ?

फ़ितरत—सरकार, अभी अधखिली कली है।

शाहज़ादी—हमसे भी ज्यादा ख़ूबसूरत है क्या ?

फ़ितरत—(दोनों कानों पर हाथ रखकर) तोबा-तोबा ! कहाँ हुज़ूर शाहजादी—कहाँ वह बाँदी।

शाहज़ादी—(हँसकर) हज़रत उदयपुरी बेगम की बनिस्बत ?

फ़ितरत—(हँसकर) हुज़ूर ! वह चाँद का टुकड़ा है।

शाहज़ादी—बख्शीश मिलेगी (पुकार कर) कोई है ?

(एक तातारी बांदी नंगी तलवार लिये आती है)

बांदी—हुक्म।

शाहज़ादी—रंगमहल के खजानची पर इस औरत को इनाम का परवाना जारी करने को मीर मुन्शी से कह दे। (बुढ़िया से) दूर हो शैतान।

(बुढ़िया और बाँदी जाती हैं)

शहज़ादी—(स्वगत) काम की खबर है। अब उस जर्जियाना बाँदी का ग़ुरूर मुझे नहीं बर्दाश्त होता। इस रंग महल का

वही एक खटका है। वह काफ़िर अव्वा को अपने चुङ्गल में बुरी तरह फाँसे है। वह भूल गई है जब वर्दाफरोशों के हाथ से उसे बदनसीव दारा ने ख़रीदा था। आज वह मलिका है। और मुझे भी उसे सलाम करना पड़ता है। कम्वख्त कृस्तान हर दम शराव में वुत वनी रहती है। उसे खोद निकालने का यह अच्छा ख़ासा जरिया होगा। यह राजपूत मग़रूर लड़की अगर वादशाह की वेगम वन सके। (कुछ सोचकर) ठीक है। वह आग जलाऊँ कि जिसका पार नहीं।

(सोचती है। पर्दा गिरता है।)

चौथा दृश्य

(स्थान—मेवाड़ का विकट वन। एक पहाड़ी पड़ाव। समय—सन्ध्या-काल। भीलों की एक छोटी सी बस्ती। एक बूढ़ा थका हुआ ब्राह्मण सिर पर बड़ा सा बोझा लिये आता है)

ब्राह्मण—अरे भाइयों, इस ब्राह्मण को आज रात आश्रय मिलेगा?

एक भील—कौन हो तुम।

ब्राह्मण—ब्राह्मण हूँ, मेरे साथ देवता हैं।

(सब भील खड़े हो जाते हैं)

एक बूढ़ा भील—(आगे बढ़कर) तुम्हारे साथ देवता हैं?

ब्राह्मण—हाँ भाई।

भील—कहाँ से आ रहे हो?

ब्राह्मण—कहाँ से बताऊँ भाई। मेरी दुःख की कहानी बहुत भारी है। बैठो तो कहूँ। आज रात आश्रय दोगे?

भील—आराम से बैठो। आग जल रही है। देवता को सिर से उतार लो।

(ब्राह्मण सिर से बोझ उतार एक ऊँची जगह रखता है)

भील—(निकट आकर) अब कहो।

ब्राह्मण—मैं जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर सब राजपूताना घूम आया।

भील—किस लिये ब्राह्मण देवता?

ब्राह्मण—(गद्गद कण्ठ से) देवता की रक्षा के लिये। जो देवता जगत की रक्षा करते हैं। जिनकी कृपा से मेघ जल बरसाता है। रात्रि चाँदनी बखेरती है। सूर्य तपता है। दिन सौन्दर्य वखेरता है, आज भारत में उनकी रक्षा नही हो सकती। आर्यों की भूमि भारत से धर्म उठ गया।

भील—नहीं, कौन देवता का अपमान करता है। हम उसे मार डालेंगे।

ब्राह्मण—भोले भाइयो! तुम्हारी शक्ति से वह बाहर की बात है। जिसके भय से राजपूताना थर-थर काँपता है। राजा और महाराजा जिसकी सेवा मे खड़े रहते हैं, उसी के भय से—मैं देवता के लिये इस द्वार से उस द्वार और उस द्वार से इस द्वार मारा-मारा फिर रहा हूँ—उसी के भय से कोई मुझे आश्रय नहीं देता। तुम भी उससे मेरे देवता की रक्षा नही कर सकते? (आँखों के आँसू पोंछता है)

भील—कौन है वह ऐसा बली?

ब्राह्मण—आलमगीर बादशाह। जिसने बाप को कैद करके और भाइयों को क़त्ल करके दिल्ली के तख्त को कलंकित किया है। जो मुग़ल वंश का राहू होकर जन्मा है। उसने हिन्दुस्तान के तमाम मन्दिरो को ढहवाना शुरू कर दिया है। देश के बड़े-बड़े प्रसिद्ध धर्मस्थान ढहकर

आज खण्डहर हो गये। देवताओं के अङ्ग खण्ड-खण्ड हो गये। पर कोई हिन्दुओं की लाज रखने वाला माई का लाल ऐसा नहीं जो इस पाप से भारत का उद्धार करे।

भील—(उत्तेजित होकर) ऐसा न कहो। धरती कभी वीरविहीन नही होती है। ऐसा ही एक वीरवर अभी भी पृथ्वी पर है।

ब्राह्मण—कौन है वह ?

भील—महाराणा राजसिंह, मेवाड़ का अधिपति। हिन्दुसूर्य।

ब्राह्मण—मैंने उनका यश सुना है और मैं वही जा रहा हूँ। क्या शरण मिलेगी।

भील—अवश्य मिलेगी। तुम्हारे साथ कौन देवता है।

ब्राह्मण—द्वारिकाधीश हैं। हम लोग गोवर्धन से भागे आ रहे हैं।

भील—ब्राह्मण देवता, स्नान पूजन करके देवता को भोग लगा निर्भय विश्राम करो। देवता की प्रतिष्ठा मेवाड़ की वीर भूमि मे अवश्य होगी।

ब्राह्मण—(प्रसन्न होकर) भगवान् आपकी वाणी सुफल करे।

(आँख मींच कर भगवान की प्रार्थना करता है)

(पर्दा बदलता है)

पाँचवाँ दृश्य

(स्थान—दिल्ली का लाल क़िला। रंगमहल का भीतरी भाग। उदयपुरी बेगम का शयन कक्ष। बादशाह औरंगज़ेब और उदयपुरी बेगम बातें कर रहे हैं। समय—रात्रि)

उदयपुरी बेगम—(शराब का प्याला भर कर) लीजिए जहाँपनाह, यह प्याला अपनी उस चहेती के नाम पर, जिसने हुज़ूर की तस्वीर को जूतियों से कुचल डाला। (प्याला बढ़ाती है)।

बादशाह—(ग़ुस्से में भर कर) शराब रहने दो, यह कहो कि यह ख़बर तुम्हें किसने दी ?

बेगम—(नख़रे से) हुज़ूर, उड़ती चिड़िया ख़बर दे गई। फिर इसमें मलाल ही क्या—हसीनों के चोचले ही जो ठहरे। अगर हुज़ूर को उस नाज़नी के नाम का यह प्याला पीने में दरेग़ है तो बन्दी ही पीती है। (प्याला पीकर) वाह, क्या लज़ीज़ शराब है। ये फरंगी शराब बनाने में लाजवाब है। तो जहाँपनाह ·····।

बादशाह—मैं तुमसे सही तौर पर यह जानना चाहता हूँ कि तुम्हें यह ख़बर किसने दी ?

बेगम—किसीने दी, मगर है सच। (दूसरा प्याला भरती है)

बादशाह—बेगम, तुम जानती हो कि मैं तुम्हें किस क़दर प्यार करता हूँ। यहाँ तक कि जिस शराब के पीने की सल्तनत भर मे मनाही है, तुम्हारे महल मे नहीं।

बेगम—(शराब भरती हुई) जानती हूँ जहाँपनाह। मगर लौंडी का इतना ख्याल उस रूपनगर की रानी के बाद रहेगा या नहीं यह कौन जाने ? (हँसकर) जाने दीजिए, जो होगा देखा जायगा। लीजिए एक जाम पीकर ग़म ग़लत कीजिये।

बादशाह—मुझे माफ करो बेगम ! मैं संजीदगी से जानना चाहता हूँ कि क्या यह ख़बर सच है।

बेगम—एकदम सच।

बादशाह—तुम यह कहना चाहती हो कि तुम्हें यह ख़बर तुम्हारे मातबर आदमी ने दी है ?

बेगम—बेशक ! (प्याला पीकर) हुज़ूर का इरादा क्या है ?

बादशाह—मैं रूपनगर की ईंट से ईंट बजा दूँगा।

बेगम—बादशाह आलमगीर के लिये यह एक अदना काम है। मगर इसी सिलसिले मे क्या हुज़ूर मेरी एक ख्वाहिश पूरी करेंगे।

बादशाह—कौनसी ख्वाहिश बेगम।

बेगम—एक छोटी सी ख्वाहिश।

बादशाह—आख़िर सुनूँ भी।

बेगम—महज़ मज़ाक।

बादशाह—तुम क्या चाहती हो बेगम ?

बेगम—हुज़ूर, ये बदशक्ल गेंडे की सी शक्लवाली बाँदियाँ मेरा तम्बाकू ठीक तौर पर नहीं भर पाती हैं। सुना है राजपूताने की बाँदियाँ तम्बाकू भरना .खूब जानती हैं। क्या मज़ा हो जो यह रूपनगर की बाँदी मेरा तम्बाकू भरे। जहाँपनाह यह अदना सी मेरी फ़र्माइश है।

बादशाह—(उठते हुए) तुम्हारी यह अदना फर्माइश पूरी की जायगी। रूपनगर की वह बाँदी तुम्हारा तम्बाकू भरेगी।

बेगम—(खुश होकर प्याला भरती हुई) शुक्रिया जहाँपनाह। तो इसकी .खुशी में हुज़ूर एक प्याला इस विलायती शराब का न पीजियेगा ?

बादशाह—नहीं बेगम, अभी मुझे बहुत काम है।

(जाता है)

छठा दृश्य

(स्थान—रूपनगर के राजा का दीवानख़ाना। राजा और मन्त्री बातें कर रहे हैं। समय—अपरान्ह।)

मन्त्री—महाराज! आज ही दिल्ली को जवाब देने का आख़िरी दिन है। आज शाही कासिद को बिदा करना होगा।

राजा—मैं इतना अधम नहीं। जीते जी अपनी कन्या विधर्मी को नहीं दूँगा। मेरे तन मे क्षत्रिय रक्त है। मेरे पूर्वजों ने अपनी आन पर प्राण दिये हैं। बादशाह को लिख दो। हमे उनका प्रस्ताव स्वीकृत नहीं है।

दीवान—महाराज! कल्पना कीजिए, कि अभी तो बादशाह ने विनय शिष्टाचार से राजपुत्री की याचना की है, यदि वह ज़ोर ज़ुल्म पर उतारू हो कर बल से कुमारी का डोला ले जाय तो कौन हमारी रक्षा करेगा? राजपूताने के सभी राजपूतों की बेटियाँ शाही रंग महल की शोभा विस्तार कर रही हैं। एक दो जो बच रहे हैं उनकी गिनती उँगली पर गिनने योग्य है। वे तभी तक बच सकते हैं जब तक शाही क्रूर दृष्टि उनकी ओर न हो। फिर जो लोग शाही रिश्तेदार हो चुके—वे अपने मुँह की कालिख पोंछने को चाहते हैं कि दूसरे राजपूत क्यों अछूते बच रहें। फिर राजपूतों में संगठन नहीं;

एकता नहीं। स्वार्थ और घमण्ड ने राजपूतों की वीरता और तलवार की धार को उन्हीं के लिए शाप बना दिया है। इससे महाराज, इस विषय पर जैसा ठीक समझें विचार कर लें।

राजा—विचार हो चुका—मैं शाही महल मे लड़की नहीं दूँगा।

दीवान—तो महाराज, इस छोटे से राज्य की कुशल नहीं। हमें अपना सब कुछ खोना पड़ेगा।

राजा—मैं खुशी से सर्वस्व दूँगा। पर अपने राजपूती जीवन पर दाग़ न लगाऊँगा।

दीवान—अभयदान मिले तो और एक बात निवेदन करूँ।

राजा—निर्भय होकर जो चाहे कहिये। आप राज्य के पुराने शुभ-चिन्तक और हमारे मित्र है। आप कभी कच्ची बात न कहेंगे।

दीवान—महाराज, आत्मरक्षा का एक और उपाय है।

राजा—वह क्या ?

दीवान—राणा राजसिंह को राजकुमारी ब्याह दीजिये। राणा राजसिंह इस समय राजपूताने का दैदीप्यमान नक्षत्र हैं। वह परम राजनीतिज्ञ, चतुर, कर्मठ, वीर और प्रतापी है। राजपूताने का वही केन्द्र है। उसकी मित्रता और सम्बन्ध भविष्य में हमारे लिए परम सुखद होगा।

राजा—यह असम्भव है, दीवान जी, जिस शत्रु ने मेरे राज्य पर आक्रमण करके मेरा गढ़ छीन लिया है उसे तो मैं इसी तलवार का तीखा पानी पिलाने का इच्छुक हूँ। उसे मैं बेटी दूँगा ?

दीवान—महाराज, बड़े स्वार्थों की रक्षा के विचार से छोटे मोटे स्वार्थ त्यागने पड़ते हैं। यह अवसर क्रोध करने का नहीं है। राजनीति कहती है कि यदि हम राणा का यह अपराध क्षमा कर उसके पास राजकुमारी के सम्बन्ध का सन्देश भेजेंगे, तो सब ओर कल्याण ही कल्याण है। पहिली बात तो यह होगी कि राजकुमारी को सर्वश्रेष्ठ घर-वर मिलेगा और उसकी चिन्ता के भार से हम मुक्त होंगे। दूसरे राजसिंह जैसे शत्रु से मित्रता होगी। तीसरे राजपूतों के संगठन की एक जड़ जमेगी। आगे महाराज की जैसी मर्जी।

राजा—मैं राजसिंह को क्षमा नहीं कर सकता। पहले मॉडलगढ़ लूँगा, पीछे दूसरी बात।

दीवान—महाराज ! विपत्ति के बादल हमारे छोटे से राज्य पर मँडरा रहे हैं। इनसे कैसे उद्धार होगा ? सेवक की प्रार्थना है कि फिर से इस विषय पर विचार कर लिया जाय।

राजा—अब और कुछ विचारने का काम नहीं है। क्षत्रिय का जीवन एक पानी का बुलबुला है। रहा रहा—न रहा न

रहा। आप बादशाह को साफ-साफ इन्कार कर दीजिये।

दीवान—महाराज, आज्ञा पाऊँ तो एक निवेदन करूँ ?

राजा—(अधीर होकर) अब और आप क्या कहना चाहते है ?

दीवान—(हाथ जोड़ कर) महाराज ! हमें राजनीति से काम लेना चाहिए ? बादशाह से विचारने के लिए दो महीने का अवसर लेना ठीक होगा।

राजा—पर मुझे तो कुछ सोचना-विचारना नहीं है।

दीवान—फिर भी महाराज! दास की प्रार्थना है। दो मास में हम कुछ युक्ति सोच लेंगे, जिससे आगे की बचत निकलने का कुछ सुभीता निकल आवेगा।

राजा—अच्छा, ऐसा ही कीजिये।

(पर्दा गिरता है)

सातवाँ दृश्य

(स्थान—उदयपुर का राजमहल। महाराणा और कुँवर जयसिंह तथा भीमसिंह। समय—रात्रि)

राणा—कौन हैं वे ?

कुँवर जयसिंह—गोवर्धन के गुँसाईं हैं। उनके साथ श्रीद्वारिकाधीश और श्रीनाथ जी की मूर्ति है। महाराज! वे सब ओर से निराश होकर आपकी शरण आए हैं।

राणा—पापी वादशाह ने क्या देवमन्दिरों को भी विध्वंस करा डाला है ?

भीमसिंह—जी हाँ, उसके सैनिक राज्य भर के मन्दिरों को ढहा रहे हैं। काशी विश्वनाथ के मन्दिर को ढहाकर उसने मस्जिद वनवा ली है।

राणा—तो भारतवर्ष के हिन्दू इतने पतित हो गये हैं कि चुपचाप सव सहन करते हैं। क्या उनकी रगों मे रक्त नहीं है ?

कुँवर जयसिह—यही नहीं! उसने जजिया भी लेना शुरू कर दिया है।

राणा—यह तो अत्यन्त अपमानजनक है। हिन्दुओं ने इसका भी विरोध नहीं किया ?

कुँवर जयसिंह—किया था, इस अन्याय के विपरीत अर्ज गुजारने दिल्ली के हिन्दू जामा मस्जिद के आगे जमा हुए थे, वादशाह ने उन्हे हाथी से कुचलवा दिया।

राणा—(उत्तेजित होकर) हाथी से कुचलवा दिया। दिल्ली के दरबार मे इतने हिन्दू राजा हैं, किसी ने कुछ नहीं किया ?

भीमसिंह—कुछ नहीं किया महाराज ! किसी ने चूँ तक न की।

राणा—हाय रे भारत के हिन्दुओ के दुर्भाग्य ! गुसाईं कहाँ २ गये थे।

भीमसिंह—महाराज ! वे बूँदी, कोटा, पुष्कर, किशनगढ़ और जोधपुर गये थे, पर औरंगज़ेब के भय से किसी ने मूर्ति को आश्रय नहीं दिया। अब गुसाईं सब ओर से निराश हो मेवाड़ की शरण आये हैं।

राणा—मेवाड़ में शरणागत अभय है। उन्हे कहो—मेरे एक लाख राजपूतो के सिर कटाने पर औरंगजेब मूर्तियो के हाथ लगा सकेगा। श्रीनाथ जी की मूर्ति की प्रतिष्ठा सीहाड़ में और श्रीद्वारिकाधीश की मूर्ति की कांकरोली मे करा दी जायगी। मूर्ति की पूजा भोग के लिये समुचित गांवों की व्यवस्था कर दी जायगी। तुम दोनों भाई मूर्तियों को आदर मान से राज्य में ले आओ।

भीमसिंह—जो आज्ञा—

(जाता है)

आठवाँ दृश्य

(स्थान—रूपनगर का अन्तःपुर । समय—रात्रि । राजकुमारी चारुमती एकान्त में राजसिंह की मूर्ति को गोद में लिये बैठी गा रही है ।)

पाहुन पलकों में बस जाना ।

नेह नीर दृग छलक रहे अब ।
गीले नैन पखारेंगे पद ।
मूक प्रतीक्षा अश्रुत पदध्वनि,
इस जीवन के ओर छोर तक—
अविकल कल तक आ जाना ।

पाहुन पलकों में बस जाना ।

अमित तुम्हारी स्मृति ही का धन,
रखा रही आँचल में बाँधे ।
अपने में खोई सी बैठी—
इस सूने मन्दिर में आकर—
पीछे मत फिर जाना ।

पाहुन पलकों में बस जाना ।

(तस्वीर को एक टक निहारती है)

कुमारी—प्रभात के सूर्य की किरणों की भांति तुम ने मेरे दृग की अँधेरी कन्दरा में प्रवेश किया और उज्ज्वल आलोक बखेरा । आशा का एक तार मुझे तुम तक खींचे लिये

जा रहा है। (देखकर) तुम्हारी स्मृति कितनी मधुर, तुम्हारा चिन्तन कैसी तपस्या, तुम्हारा गुणगान कैसा आल्हाद कारक है। हे वीर, हे पौरुष के अवतार, यह क्षत्रिय बाला आज अपने नारी जीवन को तुम्हारे अर्पण करती है। (तस्वीर पर माथा टेकती है अकस्मात् निर्मल आती है।)

निर्मल—अरे! यहाँ यह क्या हो रहा है ?

कुमारी—(तस्वीर छिपाकर) कहाँ ? कुछ भी तो नहीं।

निर्मल—यह चोरी और सीनाजोरी। अच्छा, कुछ भी नहीं सह

(मुँह फुलाकर चल देती है)

कुमारी—रूठ चली क्या ? अच्छा सुन, मैं··मैं जरा कुछ सोच रही थी।

निर्मल—क्या सोच रही थीं राजकुमारी ?

कुमारी—यही-कि (सिटपिटाकर) कि·······क्या बताऊँ।

निर्मल—नहीं बता सकोगी। बहाना बन सका ही नहीं।

कुमारी—तू क्या समझती है—बता ?

निर्मल—यही कि कुमारी जी कुछ सोच रही थीं।

कुमारी—क्या सोच रही थी ?

निर्मल—मैं क्या जानूं, आपके मन की बात।

कुमारी—तू सब जानती है बता ?

निर्मल—वह तस्वीर दीजिये, बताऊँ।

कुमारी—(घबराकर) कौनसी तस्वीर ?

निर्मल—वही, जो अभी आपने छिपा दी है और जिसे पलकों में बसा रही थी।

कुमारी—(रुष्ट होकर) बड़ी दुष्ट है तू, दूर हो।

निर्मल—जाती हूँ महारानी से सब हकीकत कहे देती हूँ।

(जाना चाहती है)

कुमारी—ठहर, सुन एक बात।

निर्मल—जाने दीजिये—मैं जरा महारानी·····

कुमारी—(हँसकर) मार खायगी।

निर्मल—जी हाँ, और खा ही क्या सकती हूँ।

कुमारी—अच्छा सुन।

निर्मल—कहिये।

कुमारी—(उदास होकर) कैसे कहूँ ?

निर्मल—मैं समझ गई। पर चिन्ता क्या है।

कुमारी—(आँखों में आँसू भर कर) तूने सब बाते नही सुनी।

निर्मल—कौन बातें ?

कुमारी—दिल्ली से दूत आया था।

निर्मल—देख चुकी हूँ, सुन भी चुकी हूँ।

कुमारी—अब क्या होगा ?

निर्मल—महाराज ने बादशाह से दो महीने की मुहलत माँगी है।

कुमारी—इसके बाद ?

निर्मल—इन्कार कर दिया जायगा।

कुमारी—इन्कार से क्या होगा, पलक मारते दल बादल छा जायगें—रूपनगर की ईंट से ईंट बज जायगी।

निर्मल—तो उपाय क्या है ?

कुमारी—उपाय है।

निर्मल—(हँसकर) समझी। पर आपको एक बात मालूम है ?

कुमारी—कौन बात ?

निर्मल—राणा से महाराज की शत्रुता है।

कुमारी—किस बात पर ?

निर्मल—महाराणा ने माण्डलगढ़ पर चढ़ाई करके उसे दख़ल कर लिया है। महाराज उन पर सेना भेजने क तैयारी में हैं।

कुमारी—पिता जी क्या उनसे लड़ सकेंगे ?

निर्मल—न लड़ सकें, वे भी वीर हैं। हारना भी तो वे न सहन करेंगे। फिर माण्डलगढ़ उन्हे बादशाह ने दिया था—बादशाह उनकी मदद करेगा।

कुमारी—बादशाह ज्योंहीं जानेगा कि उसे डोला देने से इंकार कर दिया गया है। वह रूपनगर की ईंट से ईंट बजा देगा।

निर्मल—जब जो होगा देखा जायगा। हम स्त्री जाति कर भी क्या सकती हैं।

कुमारी—(आँसू भरकर) राजपूतों की बेटियाँ इसी से तो पैदा

होते ही मार डाली जाती है। जो जीती बचती हैं वे ऐसी सांसत भुगतती हैं।

निर्मल—कुमारी, व्यर्थ अपने मन को दुखी न करो, समय पर कुछ न कुछ हो ही रहेगा। महाराज कुछ करेंगे।

कुमारी—मुझे धैर्य नहीं होता।

निर्मल—भगवान् सबके स्वामी, सबके रक्षक हैं। चलिये सोइये। अधिक जागने से आपकी तबियत बिगड़ जायगी।

(दोनों जाती हैं)

———

नवाँ दृश्य

(स्थान—उदयपुर का राजमहल। पाटवीकुमार जयसिंह का महल। जयसिंह की रानी—कमलकुमारी अपने कक्ष में सखियों सहित गा रही है। समय—प्रातःकाल।)

मत देर करो सजनी अब झटपट नूतन साज सजाओ।
मेरे सूने मनमन्दिर में नूपुर सखी बजाओ।
नव बसन्त आया आली—फूलों से मुझे रिझाओ।
जीवन तरंग की झूला में तुम झूलो मुझे झुलाओ।
गाकर मधु गायन कोकिल स्वर में सु-बसन्त बुलाओ।
प्यासे प्राणों को सखि छक कर जीवनसुधा पिलाओ।
उर की दीपशिखा से जगमग अनगित दीप जलाओ।

रानी कमलकुँवर—तारो से भरी इस रात मे जीवन कैसा स्निग्ध मालूम होता है। प्राणो मे मोहक स्नेह जैसे फूटा पड़ता हो। सखिओ! यह जीवन इतना सुन्दर क्यो है?

एक सखी—इसलिये कि यही जीवन संसार का केन्द्र है।

रानी—सच है, जैसे प्रकृति मे प्रभात, मध्याह्न, अपराह्न और सन्ध्या होती है उसी प्रकार जीवन में भी। कहो तो, जीवन मे कौनसा क्षण सबसे सुन्दर होता है।

एक सखी—प्रभात, जहाँ आकांक्षाओं की कोमल कलिकाएँ अविकसित रहती हैं। प्रातःकालीन मन्द समीर की भाँति जहाँ सरल-शुद्ध प्रेम की भीनी महक हृदय को विकसिक करती रहती है। जहाँ चिन्ता की धूल-गर्द नहीं, अधिकार मद की दुपहरी नहीं, जहाँ केवल उन्मुक्त तितलियों की सी उड़ान है, जहाँ ऊषा की सुनहरी किरणों की भाँति मनोरम अल्हड़पन है। जीवन का वह प्रभात कैसा सुन्दर—कैसा प्रिय—कैसा पवित्र है सखी!

दूसरी—सचमुच। परन्तु यौवन जीवन की दुपहरी है। उसमे जब वासना की प्रचण्डता आती है—तो फिर संसार का कुछ और ही रूप दीखने लगता है। उसका एक अलग ही सौन्दर्य है। जहाँ तेज है, तप है, उत्कर्ष है और शक्ति का समुद्र है।

रानी—परन्तु, उस प्रखर सौन्दर्य में भी एक भीषण वस्तु तो दुर्दम्य वासना का ज्वार है। उसे यदि सीमित रखा जाय तो यौवन जीवन का सर्वोत्कृष्ट भाग है। नहीं तो पतन का सरल मार्ग।

दूसरी सखी—देवी! मध्याह्न के बाद प्रखर तेजवान् सूय का पतन तो होता ही है।

रानी—उसे पतन क्यों कहती हो सखी! विकास की एक सीमा है। तुम क्या कहना चाहती हो कि जीवन में प्रखरता

बढ़ती ही जाय। फिर तुम्हे मालूम है-पृथ्वी गोल है, सूर्य के चारों ओर धरती घूमती है, अविरल गति से प्रकृति का यह क्रम चल रहा है। सखी, जिसे हम प्रभात-मध्याह्न-सायंकाल और रात्रि कहते हैं। वह सत्य कुछ नही, परिस्थितियों का परिवर्तन है। प्रकृति तो एक रस-एक भाव से अप्रतिहत गति से अपने मार्ग पर चल रही है।

तीसरी—तो फिर जीवन भी ऐसा ही रहा ?

रानी—तब क्या ? जीवन का जो केन्द्र विन्दु है, वह तो न कभी वालक होता है, न वृद्ध, न उसमें वासना उद्दीप्त होती है न शमन। यह सव तो भौतिक परिवर्तन हैं। उसी प्रकार, जैसे सूर्य न कभी अस्त होता है न उदय। वह तो ध्रुव रूप से अपने स्थान पर स्थिर होकर तेज बखेरता है। विकल्प के नेत्र ही उसका उदय अस्त देख पाते हैं।

दूसरी सखी—तव तेजस्वी पुरुषों का भी यही हाल है। बाह्य दृष्टि से जो उनका उत्थान-पतन दीख पड़ता है वह सव विकल्प है ? वे हर हालत में वैसे ही तेज और शक्ति के अधिष्ठाता रहते हैं।

रानी—निश्चय ही ! (हँसकर) परन्तु सखियों ! हम लोग तो

आनन्द विलास हास करतीं करती तात्विक विवेचना में लग गईं। (देखकर) लो महाराज आ रहे हैं।

(कुमार जयसिंह आते हैं, सब सखियाँ अदब से हट जाती हैं)

रानी—(हँसकर) आज आपके आखेट का दिन है न ?

जयसिंह—है तो।

रानी—कहाँ, तैयारी तो कुछ नहीं दीख पड़ती।

जयसिंह—(हँसकर) सोचता हूँ, तुम्हारे इस प्रेमप्रसाद को छोड़ कर कहाँ जाऊँ। जाने दो आज मेरा नहीं तुम्हारे आखेट का दिन रहे।

रानी—वह कैसे स्वामिन् !

जयसिंह—(हँसकर) बिल्कुल सीधी वात है प्रिये ! मैं तो तुम्हारा सर्वसुलभ आखेट हूँ।

रानी—सच ? पति क्या स्त्रियों के सुलभ आखेट हुआ करते हैं, खासकर क्षत्रिय पति।

जयसिंह—मैं तो यही समझता हूँ। पुरुषों का शिकार स्त्रियाँ अनायास ही कर डालती हैं। स्त्रियों के नयन वाणों से·····

रानी—छीः स्वामी, वीर राजपूत भी यदि कामिनी के नयनवाण के आखेट हुए तो फिर वे देश पर, धर्म पर, जाति पर जीवन को उत्सर्ग कैसे कर सकेंगे ?

जयसिंह—उत्सर्ग ? जीवन की इस मध्यावस्था में ? तुम्हीं तो

कहा करती हो कि जीवन कैसा सुन्दर है, कैसा मनोरम है, कैसा बहुमूल्य है।

रानी—तभी तो जीवन उत्सर्ग का इतना महात्म्य है। सड़ी गली चीजें तो लोग यों ही फेंक देते हैं, प्रियतम चीज़ को उत्सर्ग करना ही सबसे बड़ा त्याग है।

जयसिंह—प्रियतम चीज़ को उत्सर्ग करना ?

रानी—क्यों नही, फूल खिलता है, जब वह धीरे २ विकसित होता है कैसा सौन्दर्य बखेरता है। जब वह पूर्णरूप से विकसित हो जाता है। उसमें सौरभ का समुद्र प्रवाहित होता है। वही उसके उत्सर्ग का समय है। उसी समय उसे भट्टी मे डालकर इत्र खींच लेना चाहिये। नही तो······

जयसिह—नही तो ?

रानी—(करुण स्वर में) वह मुर्झाकर सूख जायगा, उसकी पंखुड़ियाँ झड़ जायँगी और उसका जीवन व्यर्थ होगा। अस्तित्व नष्ट होगा।

जयसिह—मनुष्य का जीवन भी ऐसा ही है कुछ, तुम यह कहा चाहती हो ?

रानी—हाँ स्वामी, और राजपूतो का सबसे अधिक।

जयसिह—क्यो ?

रानी—त्याग श्रेष्ठ है, यह सब कहते हैं। पर प्राण त्याग सबसे श्रेष्ठ है और वह क्षत्रिय युद्ध मे त्यागते हैं। इसलिये संसार मे सबसे श्रेष्ठ त्यागी क्षत्रिय है।

जयसिंह—यह हुआ क्षत्रिय पुरुष का धर्म, अब क्षत्रिय बाला की बात भी कहो।

रानी—वह उस विकसित फूल की सुगन्ध है। फूल के जीवन के साथ उसके बाद भी सौरभ बखेरना उसका काम है। फूल जब भभके में तपाया जाता है, तब भी वह अक्षुण्ण रहती है। वह अमर है—अक्षय है। वह प्राणोंसे सीधा सम्बन्ध रखने वाली गन्ध है। फूल के प्राणों का निचोड़ उसी मे है स्वामी।

जयसिंह—(निकट आकर) यह तुम्हारे भीतर कौन बोल रहा है प्रिये! क्या तुम मेरी वही मुग्धा-सरला बाला कमल हो? नहीं-नहीं कोई देव अंश तुम में है।

रानी—(हँसकर) है स्वामी, वह अंश राजपूत शक्ति का है। जो इस आपकी दासी के स्त्रीत्व से पृथक् उस पर शासन कर रहा है। यह नारी शरीर आपका दास है, पर वह राजपूत शक्ति नहीं।

जयसिंह—वह क्या है?

रानी—वह तुम्हारी इस तलवार की धार से भी प्रखर है। घातक भी और रक्षक भी।

जयसिह—जाने दो इसे, मुझे तुम्हारा स्त्रीत्व चाहिये। माधुर्य-सौकुमार्य, कोमलता और भावुकता से ओतप्रोत।

रानी—नहीं स्वामी, उससे अधिक तुम्हें इस अधम नारी शरीर में बसी हुई राजपूत शक्ति की ज़रूरत है।

जयसिंह—(हँसकर) क्या घातक होने के कारण।

रानी—(हँसकर) नहीं रक्षक होने के कारण। स्वामी, आप महा तेजस्वी राणा राजसिंह के पाटवी पुत्र—मेवाड़ की यशस्विनी गद्दी के उत्तराधिकारी हैं।

जयसिह—जानता हूँ। और शक्ति और प्रेम की देवी कमल कुमारी का पति भी। चलो अब।

रानी—(हँसकर) चलो।

(दोनों जाते हैं, पर्दा गिरता है)

तीसरा अङ्क

पहिला दृश्य

(स्थान—उदयपुर, देवी के मन्दिर का एक पार्श्व भाग। रत्नसिंह और उसकी भावी पत्नी सुहाग-सुन्दरी। समय—प्रातःकाल)

रत्नसिंह—ठहरो राजकुमारी, मुझे तुम से कुछ कहना है। क्या तुम जानती हो कि मैंने तुम्हे पूजा के बहाने यहाँ मिलने को बुलाया है।

राजकुमारी—जानती हूँ। परन्तु यह क्या उचित हुआ है? माता जी से मुझे झूँठ बोलना पड़ा है।

रत्नसिंह—इसमें अनुचित क्या है? तुम से मेरी मँगनी हुई है। तुम मेरी भावी पत्नी हो, मुझे तुम से मिलने का अधिकार है।

राजकुमारी—कहिए, आपने मुझे क्यो बुलाया है?

रत्नसिंह—मुझे कुछ कहना है।

राजकुमारी—कहिए।

रत्नसिंह—इतनी जल्दी? यह तो असम्भव है, मुझे सोचना पड़ेगा।

राजकुमारी—तो फिर कभी कह लीजियेगा, अभी मैं जाती हूँ।

(जाना चाहती है)

रत्नसिंह—(रास्ता रोककर) विना जवाब दिये न जा पाओगी कुमारी !

राजकुमारी—आप कुछ कहते भी हैं।

रत्नसिंह—कहता हूँ, सुनो।

राजकुमारी—कहिए।

रत्नसिंह—पिताजी महाराणा से रुष्ट होकर दिल्ली चले गये हैं।

राजकुमारी—सुन चुकी हूँ।

रत्नसिंह—वे जीते जी मेवाड़ आवेगे भी या नहीं, सन्देह है।

राजकुमारी—यह हमारा बड़ा दुर्भाग्य है। अब मैं जाऊँ? (जाना चाहती है)

रत्नसिह—क्या बिना सुने ही ? वह वात......

राजकुमारी—कौन बात ? जल्द कहिए।

रत्नसिंह—कह तो रहा हूँ, पर भागोगी तो कैसे कहूँगा।

राजकुमारी—सखियाँ मन्दिर मे वाट देख रही हैं।

रत्नसिह—वे पूजा कर रही हैं। घन्टा-आरती की आवाज़ नहीं सुनतीं ?

राज कुमारी—अब जाऊँ मैं।

रत्नसिंह—(कृत्रिम क्रोध से) जो तुम्हे मुझ से इतना विराग है तो जाओ फिर मत सुनो— मैं भी देश छोड़ दूँगा। (जाना चाहता है)

राजकुमारी—(अधीर होकर) सुनिए। आप क्या कहना चाहते हैं। कहिए न ?

रत्नसिंह—मैं भी पिताजी की भांति मेवाड़ त्याग दूंगा।

राजकुमारी—किस लिए ?

रत्नसिंह—क्या करूँ, जब कोई मेरी बात ही नहीं सुनता।

राजकुमारी—सुनती तो हूँ, कहिए।

रत्नसिंह—हाँ तो······सोचता हूँ, कहूँ कि न कहूँ। जाने दो नहीं कहता।

राजकुमारी—कहिए-कहिए।

रत्नसिंह—फिर कभी सुन लेना—अभी तुम्हे देर हो रही है।

राजकुमारी—आप कहिए।

रत्नसिंह—सखियाँ बाट देख रही होंगी।

राजकुमारी—हाथ जोड़ती हूँ—कहिए।

रत्नसिंह—(हँसकर) माताजी नाराज़ होंगी।

राजकुमारी—(झुँझलाकर) कहीं कुछ न होगा। आप कहिए तो।

रत्नसिंह—तब सुनो—मन लगाकर, ध्यान से।

राजकुमारी—सुन तो रही हूँ।

रत्नसिंह—हाँ, पिताजी तो दिल्ली चले गये। इसके बाद······

राजकुमारी—इसके बाद क्या ?

रत्नसिंह—बड़ी गम्भीर समस्या है—बड़ी टेढ़ी बात है।

राजकुमारी—ऐसी क्या बात है ?

रत्नसिंह—अच्छा कहता हूँ—सुनो।

राजकुमारी—(हँसकर फिर लजाकर) अब और कैसे सुनूं ?

रत्नसिंह—(निकट आकर) हमारा विवाह शीघ्र हो जाना चाहिए।

राजकुमारी—(लाज से सिकुड़कर) छी, यह भी कोई सुनने की बात है। (जाना चाहती है)

रत्नसिंह—(रास्ता रोक कर) कैसे नहीं है। क्या तुम यह बात सुनना नही चाहती ?

राजकुमारी—मैं क्या जानूं। अब मैं जाती हूँ। (जाना चाहती है)

रत्नसिंह—(रास्ता रोक कर) जा न सकोगी। जवाब दो।

राजकुमारी—पिताजी से कहिए। परन्तु······

रत्नसिंह—परन्तु क्या ?

राजकुमारी—बिना महाराज के आये······

रत्नसिंह—विवाह कैसे होगा, यही न ?

राजकुमारी—हाँ, पिताजी ने प्रतिज्ञा की थी कि······

रत्नसिंह—कि वे अपनी पुत्री को मेरे पिताजी के हाथ सौंपेंगे, और उन्होने प्रसन्नता से तुम्हे पुत्रवधू बनाना स्वीकार कर लिया था। अब वे क्या बिना पिताजी की उपस्थिति के व्याह न करेंगे ?

राजकुमारी—मैं नही जानती, आप पिताजी से पूछिए। परन्तु क्या ऐसे समय में जब देश पर शत्रुओं की चढ़ाई का भय है, आपका विवाह की बातें करना उचित है।

रत्नसिंह—तुम से किसने कहा कि शत्रु की चढाई का भय है ?—

राजकुमारी—सुनती हूँ। महाराणा के उद्योगो को दिल्ली का बादशाह सन्देह और भय की दृष्टि से देखता है और वह चाहे जब मेवाड़ पर आ धमकेगा।

रत्नसिंह—इसकी क्या चिन्ता है, वह जब भी मेवाड़ मे आयेगा यह तलवार उसका स्वागत करेगी (तलवार निकाल कर हवा में घुमाता है)।

राजकुमारी—एक अर्ज करूँ ?

रत्नसिंह—कहो कुमारी।

राजकुमारी—नाराज न होना।

रत्नसिंह—कभी नहीं।

राजकुमारी—आप वीर पुत्र हैं। आपके पूज्य पिता महाराज ने बड़े-बड़े कारनामे किये हैं।

रत्नसिंह—और हमारे पूर्वजो की मर्यादा भी मेवाड़ में सर्वोपरि है। हम त्यागी चूंड़ाजी के वंशधर हैं कुमारी!

राजकुमारी—आपके चरणों की दासी होना मेरा परम सौभाग्य है परन्तु .....

रत्नसिह—परन्तु क्या ?

राजकुमारी—मैं भी हाड़ी हूँ कुमार! हाड़ाओं का वंश भी हेठा नहीं।

रत्नसिंह—हाड़ाओं के अमर कारनामे जगद्विख्यात हैं।

राजकुमारी—मेरी एक प्रतिज्ञा है।

रत्नसिंह—वह क्या ?

राजकुमारी—प्रण कीजिये कि आप पूरा करेंगे।

रत्नसिंह—तुम मेरी भावी पत्नी हो कुमारी, तुम्हारी प्रतिज्ञा प्राण रहते अवश्य पूरी करूँगा।

राजकुमारी—सुन कर परम सुख हुआ कुमार ! मेरी प्रतिज्ञा है, मैं वीर पुरुष की पत्नी बनूंगी।

रत्नसिंह—तो क्या तुम्हे मेरी वीरता में सन्देह है ?

राजकुमारी—नहीं, पर मैं आँखों से देखा चाहती हूँ।

रत्नसिंह—आँखों से देखोगी, हाड़ी राजकुमारी।

राजकुमारी—क्या रुष्ट हो गये राजकुमार, मूर्ख बालिका का अपराध क्षमा कीजिये।

रत्नसिंह—(होंठ काटकर) अच्छी बात है कुमारी, वीरता का प्रमाण देकर ही मैं तुम से ब्याह करूँगा।

(तेजी से जाता है, पर्दा बदलता है)

दूसरा दृश्य

(स्थान—दिल्ली का शाही महल—बादशाह आलमगीर और उसकी बेटी ज़ेबुन्निसा। समय—सन्ध्याकाल। महल का खुला हुआ सुसज्जित नज़र बाग)

बादशाह—तो रूपनगर का राजा मर गया ?

ज़ेबुन्निसा—जी हाँ जहाँपनाह। उसके भतीजे रामसिंह ने अर्ज़ी भेजी है कि वही रूपनगर की गद्दी का सही वारिस है। वह तख्ते मुग़लिया का वफादार और पुराना शाही खादिम है। उसे शाही फ़र्मान के ज़रिये रूपनगर का राजा तस्लीम करके सरफराज किया जाय।

बादशाह—मगर उसने उस अम्र का क्या जवाब दिया है।

ज़ेबुन्निसा—हुज़ूर, उसने कहला कर भेजा है। उसकी नाचीज़ बहिन को अगर बादशाह बेगम बनने की ख़ुशकिस्मती बख़्शी जायगी तो यह उसके लिये फ़ख्र की बात होगी। वह शाही रिश्तेदारी को अपने लिये इज्ज़त की चीज़ समझता है।

बादशाह—बहतर, कल उसके पास शाही सनद भेज दी जायगी और वह रूप नगर का राजा तस्लीम कर लिया जायगा बदनौर और मांडल के परगने भी उसे दे दिये जायँगे।

मगर शर्त यह है कि वह फ़ौरन ही अपनी वहिन को दिल्ली रवाना कर दे।

ज़ेबुन्निसा—हुजूर उसकी एक शर्त है।

वादशाह—वह क्या ?

ज़ेबुन्निसा—वह चाहता है हज़रत सलामत ख़ुद रूपनगर तशरीफ ले जाकर वाकायदा राजा की वेटी से शादी करके उसकी इज्ज़त अफज़ाई करें।

वादशाह—उसकी इस शर्त की क्या वजह है ?

ज़ेबुन्निसा—हुज़ूर, वह चाहता है कि शाही रिश्तेदार होने से उसका रुतवा बढ़े, फिर हुज़ूर अगर उसकी यह अर्ज़ी कबूल फर्मावेंगे तो एक ढेले से दो शिकार होंगे।

वादशाह—तुमने इस मामले में क्या मस्लहत सोची है।

ज़ेबुन्निसा—जहांपनाह को मालूम है कि मेवाड़ के राना की ज्यादतियाँ बढ़ती जाती हैं। उसने न सिर्फ शाही इलाके ज़बरन कब्ज़े में कर लिये हैं। वल्के बाग़ी जोधपुर की रानी को अपने यहां पनाह दी है और राठौरों से मिलकर वह तमाम राजपूताने मे एक ज़बर्दस्त ताक़त—तख्ते मुग़लिया के ख़िलाफ खड़ी कर रहा है। सो हुजूर इस बार अगर रूपनगर जायँगे तो राजा की ख्वाहिश भी पूरी होगी, राना को भी देख लिया जायगा और हज़रत मुइनुद्दीन की दरगाह शरीफ की ज़ियारत भी हो जायगी।

बादशाह—तुम्हारे ख़यालात क़ाबिले गौर हैं। (कुछ सोचकर) बहतर, मैं उस राजा की अर्जी मंजूर करता हूँ। मैं आज ही फौजदार दिलेरखां और हसनअलीखां को ५० हजार फौज तैयारी का हुक्म देता हूँ मगर······

जेबुन्निसा—अब जहांपनाह किस अम्र पर गौर करने लगे?

बादशाह—यही, कि क्या वह राजा की बेटी बादशाह की बेगम बनना पसन्द करेगी। तुमने कहा था न कि, उसने मेरी तस्वीर पर लात मारी थी।

जेबुन्निसा—जी हाँ हुजूर, वह बहुत ही मग़रूर भी है।

बादशाह—और साथ ही आलमगीर को दिल से नफरत करने वाली भी।

जेबुन्निसा—उसकी यह मजाल? एक मामूली काफिर जमीदार की बेटी की यह हिमाकत? उसे पहिले गुस्ताखी की सजा दी जायगी।

बादशाह—(कुछ सोच कर) तुम उसके लिये क्या सज़ा तजवीज करती हो जेबुन्निसां!

जेबुन्निसा—अब्बा जान! अगर उस गँवारिन के दिमाग मे जरा भी मगरूरी पाई गई तो उसे कुत्तों से नुचवा डालूँगी।

बादशाह—(मुस्करा कर) और उसके बाद?

जेबुन्निसा—उसके बाद! अब्बा····

बादशाह—मगर मेरी प्यारी बेटी! किसी लड़की को बादशाह

की बेग़म बनाना और कुत्तों से नुचवाना एक ही चीज़ तो नहीं ।

ज़ेबुन्निसा—जहाँपनाह……..

बादशाह—ठहरो शाहज़ादी, मैं इस मामले पर गौर करूँगा। अब मैं जाता हूँ । तुम्हे भी इस शादी में मेरे हमराह चलना होगा ।

ज़ेबुन्निसा—जैसी जहाँपनाह की मर्ज़ी । (जाता है)

ज़ेबुन्निसा—समझी, उस ग़रूर की पुतली गँवारिन के लिये मालूम होता है अब्बा के दिल मे कही किसी कोने मे मुहब्बत छिपी है । मगर देखा जायगा । यह कम्बख्त आरमिनियन बांदी तो अब नहीं सही जाती। (कुछ सोच कर) कोई है ?

एक बांदी—(हाथ जोड़ कर) हुक्म ख़ुदावन्द ।

ज़ेबुन्निसा—शराब ।

बांदी—जो हुक्म (अदब से झुककर जाती है) ।

ज़ेबुन्निसा—खुदा ने चाहा तो हिन्दुस्तान पर फिर एक नूरजहां हुकूमत करेगी । (बांदी शराब लाती है, शराब को प्याली में डालकर पीती हुई) वह नूरजहाँ मै हूँ । (प्याला फर्श पर फैकती हुई बांदी से) इधर आ ।

बांदी—(हाथ जोड़कर) लोंडी को क्या हुक्म होता है ?

ज़ेबुन्निसा—तुझे हमारी खूबसूरती पसन्द है ।

बांदी—वल्लाह सरकार, शाही हरम मे लामिसाल हैं ।

ज़ेबुन्निसा—(हँसती हुई) सच ?

बांदी—बखुदा ।

ज़ेबुन्निसा—हज़रत नूरजहाँ से भी ज्यादा ।

बांदी—(ज़मीन चूम कर) हुजूर ज़मीं का चाँद हैं ।

ज़ेबुन्निसा—(शराब भरकर एक ही घूँट में पीकर बांदी पर प्याला फैंक कर) भाग यहाँ से हरामजादी ।

(बांदी आदाब बजाती भाग जाती है ।)

ज़ेबुन्निसा—(कुछ आप ही आप) जमीन का चाँद तो हूँ ही, जैसे चाँद में धव्वे होते हैं, उसी तरह मेरे अन्दर धव्वे हैं। मगर इससे क्या ? मैं आलमगीर बादशाह की बेटी, मुग़ल हरम की रानी और आलमगीर की प्यार की पुतली हूँ। अच्छा, जिन्हो ने रहम सीखा ही नहीं, जो सूखे काठ की तरह महज बादशाह नजर आते हैं, इस ज़ेबुन्निसा को दिल से प्यार करते हैं, मगर उस प्यार मे हिस्सा बटाने वाली वही आरमीनियन बांदी है, जिसे बुर्दा फरोशो से दारा ने खरीद लिया था और अपने नफ्स का शिकार बनाया था—वही बेगैरत और बे अस्मत औरत बदकिस्मत दारा के कत्ल होने पर अपने आका और खाविन्द के कातिल अलमगीर की बांदी बनने को झट तैयार हो गई। तुफ ! और आज वह अपनी खूबसूरती की वजह से बादशाह की बेगम बन कर शाही रंगमहल को अपने ही अदल मे

रखना चाहती है। अब्बा जैसे उसके सामने जाने पर आलमगीर ही नही रहते। एक फ़र्मांबर्दार खांविन्द बन जाते हैं—वह बांदी उनके सामने शराब पीती है और अब्बा उसके साथ ऐयाशी के दर्या मे अपनी तमाम शानोशौकत और बादशाहत जैसे डुबो देते हैं। (कुछ चुप रहकर होंठ काटती हुई) मगर मैं यह नहीं बर्दाश्त कर सकती। अब्बा को उस नागिन के चपेट से बचाना होगा और उसके लिये यह एक रास्ता है। वह भोली भाली गॅवार हिन्दू लड़की दिल से बादशाह को नफरत करती रहेगी और अब्बा उससे अपनी बादशाही तबियत की बची खुची मुहब्बत से उलझते रहेंगे। उधर मैं रंग महल पर अपना अटल रंग जमाऊॅगी।

(एक भरपूर शराब का प्याला पीकर मसनद पर लुढ़क जाती है, पर्दा गिरता है)

तीसरा दृश्य

(स्थान—रूपनगर के महल—राजा रूपसिंह की विधवा रानी और राजा रामसिंह बातें करते हैं।)

रानी—क्या तुमने दिल्ली के बादशाह को चारु का डोला देना मंजूर कर लिया है।

रामसिंह—आपसे किस ने कहा रानी मा।

रानी—मैं पूछती हूँ कि क्या सच है?

रामसिंह—अगर सच हो तो?

रानी—और यह भी सच है कि शाही सेना राजकुमारी का डोला लेने को दिल्ली से चल पड़ी है।

रामसिंह—बादशाह सलामत खुद राजकुमारी से शादी करने बारात सजा कर आ रहे हैं। भला यह इज्जत किसी और राजा को भी नसीब हुई थी।

रानी—तुमने मेरी बिना आज्ञा ऐसा क्यों किया?

रामसिंह—मैं राजा हूँ। राज काज के मामलों में किस किस बात की आपसे आज्ञा ली जायगी?

रानी—बिटिया का ब्याह राज काज है।

रामसिंह—बादशाह से सम्बन्ध रखने वाली प्रत्येक बात राज काज है।

रानी—तुम्हे स्वर्गीय महाराज की इच्छा मालूम है।

रामसिंह—उनकी बातें उनके साथ गईं।

रानी—उनकी आज्ञा के विरुद्ध कुछ न हो सकेगा।

रामसिंह—अब तो मेरी ही आज्ञा के अनुसार सब काम होंगे। मैं राजा हूं।

रानी—यह न होने पावेगा।

रामसिंह—यही होगा।

रानी—मै आज्ञा देती हूँ।

रामसिंह—यह मेरा काम है, आपका नही। आप महल में बैठकर पूजा-पाठ दान-धर्म कीजिए।

रानी—तो तुमने राजकुमारी का डोला बादशाह को देने की सोचली है।

रामसिंह—निश्चय! यह तो बहुत मामूली बात है। इसके सिवा बड़े भारी लाभ की भी।

रानी—मामूली बात है, क्यो? सुनूं तो जरा।

रामसिंह—सुनने की क्या बात है। सभी राजाओंने अपनी बेटियाँ शाही हरम में दी हैं। रानी मां हमारी बहन बादशाह की बेगम बनेगी, यह जानकर तुम्हे खुश होना चाहिए।

रानी—खुश होना चाहिए? क्यो?

रामसिंह—इसलिए कि बादशाह के रिश्तेदार बनकर हमारा राज्य, पद, मर्यादा बढ़ेगी। दिल्ली के दरबार मे

हमारा ही, सितारा चमकेगा। बादशाह ने वे सब इलाके हमे दे दिये हैं जो उदयपुर के राना ने हम से छीन लिये थे। शाही फौज जल्द उन्हें दख़ल करके हमारे सुपुर्द कर देगी।

रानी—धिक्कार है तुमको। तुम यह न कर पाओगे रामसिंह !

रामसिंह—(क्रोध से) कोई शक्ति रूपनगर के राजा को नहीं रोक सकेगी।

रानी—तो तुम बलपूर्वक यह कुकर्म करोगे ?

रामसिंह—मैं अपने राजापने के अधिकार काम में लूँगा।

रानी—कुमारी की मर्जी के विरुद्ध ?

रामसिंह—अल्हड़ लड़की, वह अपना सुख-दुःख क्या जाने।

रानी—मेरी मर्जी के विपरीत ?

रामसिंह—मेरी सलाह है कि आप इन:पचड़ों मे न पड़ें। दान धर्म...... ....

रानी—स्वर्गीय महाराज की इच्छा ?

रामसिंह—वह भी स्वर्ग सिधारी।

(तेज़ी से चारुमती आती है)

चारुमती—तुम यह न कर पाओगे भैया !

रामसिंह—बेसमझ लड़की ! बादशाह की बेगम बनने के बाद . ...

चारुमती—मैं जान पर खेल जाऊँगी। पर देश और धर्म के शत्रु को आत्मार्पण न करूँगी।

रामसिंह—(हँसकर) दिल्ली के रंगमहल के वैभव देखकर सब भूल जाओगी, बहन! मगर याद रखना जिस भाई की बदौलत यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उसे ऐश्वर्य मद में भूल न जाना।

चारुमती—(होंठ काटकर) मैं क्षत्रिय बाला हूँ?

रामसिंह—और मैं क्षत्रिय राजा हूँ।

चारुमती—तुम क्षत्रियाधम हो।

(तेजी से जाती है, पर्दा बदलता है)

चौथा दृश्य

(स्थान—रूपनगर का महल। कुमारी चारुमती और उसकी सखी निर्मल। समय—प्रातःकाल)

निर्मल—अब उपाय ?

चारुमती—उपाय तेरा सिर।

निर्मल—अच्छी बात है, दिल्ली मैं भी चलूँगी।

चारुमती—किस लिये ?

निर्मल—देखूँगी, राजपूत की लड़की कैसे उस हत्यारे बादशाह की बेगम बन कर कोर्निस करेगी।

चारुमती—उस दिन मैंने उसकी तस्वीर पर लात मारी थी।

निर्मल—मारी तो थी।

चारुमती—उस लात से उसकी नाक टूट गई थी।

निर्मल—शायद टूट गई थी।

चारुमती—दिल्ली चलकर मैं अपनी उसी लात से आलमगीर के खास रंगमहल मे ही उसकी नाक तोड़ूंगी।

निर्मल—तोड़ सकोगी ?

चारुमती—राजपूत की बेटी की लात है यह।

निर्मल—है तो, परन्तु लात से नाक ही तोड़नी है, तो एक उपाय करना होगा।

चारुमती—कौन उपाय ?

निर्मल—वही मेरा सिर।

चारुमती—तेरा सिर ? क्या वह भी तोड़ना-फोड़ना होगा।

निर्मल—अभी नहीं। अभी तो उससे काम लेना होगा। इसके बाद फिर यदि आवश्यकता हुई तो राजपूत की बेटी की लात तो कहीं गई नहीं।

चारुमती—तू बात कह, बकवाद न कर।

निर्मल—राजकुमारी, क्या सचमुच, तुम उस पापस्थली-दिल्ली के रंगमहल में जीतेजी प्रविष्ट होना चाहती हो ?

चारुमती—(आँसू भरकर) और करूँगी भी क्या ? एक वार भारतेश्वरी बन कर देखूँ।

निर्मल—हँसी न करो, आज से नवें दिन शाही फौज यहाँ आ पहुँचेगी।

चारुमती—तब मैं दिल्ली जाऊँगी।

निर्मल—तुम ?

चारुमती—नहीं तो, रूपनगर की ईंट से ईंट वज जायगी।

निर्मल—क्या राजहंसनी बगुले की सेवा करेगी। क्या सिंहनी गीदड़ को वरेगी।

चारुमती—ऐसा कभी न होगा सखी।

निर्मल—फिर क्या करोगी।

चारुमती—कहा तो, वहाँ पहुँच कर उस बन्दरमुहे मुसलमान की नाक इस लात से तोड़ूँगी।

निर्मल—यह कर सकोगी।

चारुमती—न कर सकूँगी, तो यह अँगूठी है।

निर्मल—क्या विष पीकर मरोगी?

चारुमती—राजपूतनी फिर पैदा ही किस लिए होती है।

निर्मल—(क्रोध से) कुत्ते की मौत मरने के लिए। पर कहे देती हूँ यह न होने पावेगा।

चारुमती—तब?

निर्मल—एक उपाय है।

चारुमती—क्या उपाय है? है कोई ऐसा धीर वीर, जो क्षत्रिय कुमारी की लाज रखे और दिल्ली पति के साथ रार ठाने? सभी तो राजपूत कुलकलंक मुग़ल बादशाहों के ग़ुलाम हो गये हैं।

निर्मल—अब भी धरती वीर शून्य नहीं हो पाई है, सखी! भगवती वसुन्धरा जब वीरों को जनना बन्द कर देगी तो प्रलय हो जायगी।

चारुमती—हाय, इस मुगल वंश के राहु ने राजपूतों के एक-एक वंश को ग्रस लिया है। राजपूत-बाला अब किस की शरण जाय?

निर्मल—मेवाड़ के महाराणा राजसिंह की, जिनकी वीरमूर्त्ति तुम्हारे मन में बसी है, जिनकी तलवार अजेय है, जिनकी नसों में वीरवर प्रताप और सांगा का रक्त बहता है, वह निर्भय सिंह मुग़ल शक्ति से भय नहीं

खाता। अब तुम शील संकोच छोड़ रुक्मणी बनो सखी! राजसिंह को पत्र लिखो।

चारुमती—उनकी मैं पूजा करती हूँ। पर मैंने ऐसी क्या तपस्या की है कि उनकी चरणदासी बन सकूँगी।

निर्मल—(हँसकर) चरणदासी बनने की बात पीछे सोची जायगी, अभी तो यही लिखो कि एक राजपूत बाला आपकी शरण है, उसके धर्म की रक्षा कर सको तो करो।

चारुमती—ऐसी बेहयाई का काम मैं न कर सकूँगी। मैं उन्हे पत्र कैसे लिख सकती हूँ।

निर्मल—विपत्ति मे मर्यादा नहीं रहती, सखी! मैं कहती हूँ सो करो—राजा को पत्र लिखो। आज ग्यारस है। ब्याह की तिथि पंचमी है। ६ दिन का अवसर है। चेष्टा करने पर इस अवसर मे सन्देश पहुँच सकता है।

चारुमती—पर यह सन्देश ले कौन जायगा?

निर्मल—राजपुरोहित अनन्तमिश्र को मैं ठीक कर चुकी हूँ। वे बड़े धर्मात्मा और राजपरिवार के शुभचिन्तक हैं।

चारुमती—वे यह कठिन काम कर सकेंगे?

निर्मल—अवश्य करेंगे।

चारुमती—अच्छा! पत्र पाकर भी जो राणाजी ने मेरी रक्षा करना न स्वीकार किया? मेरी रक्षा करना—अपना सर्वनाश करना है। कौन एक बालिका के लिए अपने राज्य पर विपत्ति लायगा।

निर्मल—सखी, जिस वीर की तुम पूजा करती हो, वह क्या इतना कायर है—कि शरणागत को अभय न करे। वह शरणागत एक निरीह राजपूत कन्या हो (मुस्करा कर धीरे से) और मन ही मन उन्हे वर चुकी हो।

चारुमती—(हँसकर) दुष्टता न कर। पर पत्र लिखूँ कैसे?

निर्मल—ठहर! मैं अनन्तमिश्र को बुलाने किसी को भेजती हूँ और पत्र लिखने की सामग्री लाती हूँ। (जाती है)

चारुमती—(रोती हुई) मैं वह विषैला फूल हूँ जिसे सूँघने से मनुष्य की मृत्यु होती है। न जाने यह अभागिनी कितने वीरो का काल-रूप लेकर जन्मी है। क्यो मैं वीरवर को जोखिम मे डालूँ? क्यों न आत्मघात कर प्राण दे दूँ। (रोती है)

(निर्मल आती है)

चारुमती—सखी, मेरा मरना ही अच्छा है।

निर्मल—आवश्यकता होगी तो वह भी हो रहेगा सखी! वह तो हमारे बाऐं हाथ का खेल है। पर तुम्हे तो बादशाह आलमगीर की नाक लात से तोड़नी है। अभी उसका उपाय हो। मैं भी ज़रा यह तमाशा देखूँगी। लो पत्र लिखो।

चारुमती—कैसे लिखूँ?

निर्मल—तुम लिखो, मैं बोलती हूँ।

चारुमती—नहीं तू ही लिख।

निर्मल—(हँसकर) आज तो तुम्हीं लिखो, फिर कभी होगा तो मैं लिख दूंगी।

चारुमती—मर (क़लम काग़ज़ लेकर) बोल।

निर्मल—लिखो प्रियतम प्रा............

चारुमती—(क़लम काग़ज़ फेंककर) मार खायगी तू। जा मैं नहीं लिखती।

निर्मल—(हँसती हुई) तब फिर अपनी मर्जी से लिखो।

चारुमती—लिखने का कुछ काम नहीं है। भाग्य मे जो होगा, हो जायगा।

निर्मल—अच्छा लिखो—महाराजाधिराज !

चारुमती—(लिखकर) आगे बोल।

निर्मल—आप राजपूत कुल शिरोमणि हैं और मै विपद्ग्रस्त राजपूत बाला। पत्रवाहक मेरे गुरु हैं। मेरे दुर्भाग्य से दिल्लीपति मुझ अभागिन को अपनी बेगम बनाना चाहता है, उसकी सेना मुझे लेने आने ही वाली है। यद्यपि अनेक राजपूत कन्याओ ने मुगल बादशाहों के पर्यङ्क की शोभा बढ़ाई है.....

चारुमती—(रुककर) नहीं, यह ठीक नहीं।

निर्मल—(कुछ सोचकर) तब यह लिखो—मैं प्राण दूंगी पर मुगलों की दासी न बनूंगी। (सोचकर) इसका कारण अभिमान नहीं—धर्म है। आप प्रतापी राजाधिराज एवं

समस्त राजपूतो के अधिपति और धीर वीर हैं मैं आपकी शरणागत हूँ।

चारुमती—बस, इतना ही काफी है।

निर्मल—एक बात और—अब आप अपना धर्म निवाहिए।

चारुमती—(लिखकर) बस।

निर्मल—बस अब दस्तखत कर दो। हाँ, क्या हानि है, बादशाह की नाक लात से तोड़ने की बात भी लिख दी जाय। वह भी राजपूतबाला की प्रतिज्ञा है—महाराणा को उसका भी निवाह करना होगा।

चारुमती—(मुस्कुरा कर) देख गुरुजी आये हैं या नहीं। ऐसी बात भी क्या लिखी जाती है।

(एक दासी आती है)

दासी—गुरुजी आये हैं।

निर्मल—उन्हे यहाँ भेज दे। (चारुमती से) अच्छा, अब मार्ग का क्या प्रबन्ध किया जाय। गुरुजी वृद्ध हैं। परन्तु ... खैर। (गुरुजी आते हैं)

अनन्तमिश्र—(आशीर्वाद देकर) मुझे किसलिये बुलाया है बेटी।

निर्मल—निमन्त्रण है महाराज, बहुत से मालटाल खाने को मिलेंगे, साथ मे स्वर्ण दक्षिणा।

गुरुजी—(हँसकर) अरी लक्ष्मी बेटी, यहाँ का अन्न खाते-खाते बूढ़ा हो गया। अब इस ब्राह्मण को खाने-पीने का लोभ न दो। कहो क्या काम है?

निर्मल—गुरुजी आपने कुछ सुना है। दिल्ली से दूल्हा आ रहा है।

गुरुजी—(उदास होकर) सुना है वेटी, पर उपाय क्या है ! भारत के आकाश मे से हिन्दुत्व का नक्षत्र अस्त हो रहा है।

निर्मल—गुरुजी, आपको कुमारी की रक्षा करनी होगी ?

गुरुजी—इस ब्राह्मण के प्राण जाने से कुमारी की रक्षा हो सके तो आनन्द ही है।

निर्मल—प्राणों के जाने की बात तो नही है, पर जोखिम तो है।

गुरुजी—क्या करना होगा वेटी ?

निर्मल—उदयपुर जाना होगा।

गुरुजी—(हँसकर) समझा। शिशुपाल से वचाने के लिए रुक्मिणी के सन्देश कृष्ण को पहुँचाना होगा। अच्छा जाऊँगा, परन्तु कुछ खर्च वर्च······

निर्मल—(मुहरों से भरी थैली देकर) यह लीजिये खर्च के लिए। दक्षिणा पीछे।

गुरुजी—(थैली में से ४ अशर्फी निकाल कर) इतनी वहुत हैं वेटी। जवानी सन्देश देना होगा, या कोई पत्र भी है।

निर्मल—पत्र है। (पत्र देकर) यह लीजिये और यह मोती की माला। राणा जव पत्र पढ़ने लगें तो यह माला आप उनके गले मे डाल दें। और सव कुछ आप पर प्रकट है ही, जैसे हो राणा को राजी कर लें।

गुरुजी—(हँसकर) अच्छा बेटी, अच्छा। तो अब मैं जाऊँ, लम्बी राह है।

निर्मल—और समय कम। आज ग्यारस है, ब्याह की तिथि पंचमी है। आपको इससे पूर्व ही यहाँ लौट आना होगा।

गुरुजी—(चिन्ता करके) प्रभु की कृपा से ऐसा ही होगा। जाता हूँ बेटी।

निर्मल—जाइये।

(अनन्तमिश्र जाते हैं, पर्दा बदलता है।)

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—उदयपुर के राजा का सभाभवन। महाराणा अपने दर्बारियों सहित गद्दी पर बैठे हैं। अनन्त मिश्र सामने खड़े हैं।
समय—प्रातःकाल।)

राणा—तो आप सब सरदारों की क्या मर्जी है।

मोहकमसिंह शक्तावत—अन्नदाता, इसमे विचारने की क्या बात है। शरणागत राजपूत बाला को विमुख नही किया जा सकता।

सोलंकी दलपत—राजपूत की बेटी हिन्दुपति राणा की शरण छोड़कर कहाँ जायगी महाराज।

महारावत हरिसिंह—हमारी तलवारो की धार में काफी पानी है, उसका स्वाद इस बार मुग़ल चखेंगे।

झाला सुलतानसिंह—सिंहनी जब सिह का आश्रय लेती है तब गीदड़ो का उसे क्या भय है।

सीसोदिया माधोसिंह—महाराज, इस विषय मे सोच-विचार करना हमारे लिए अपमान की बात है।

राणा—वीर पुरुषो, आप लोगो ने अपने योग्य ही बात कही। आप लोग योद्धा हैं, क्षत्रिय हैं, सूरमा है। मरना मारना ही सूरमा की शोभा है, और शरणागत की रक्षा करना प्रत्येक क्षत्रिय का धर्म है।

सब—(एक स्वर से चिल्लाकर) शरणागत अभय।

राणा—निस्संदेह मेवाड़ की भूमि पर शरणागत अभय है। परन्तु भाइयो, राज-काज की बातें केवल वीरता से ही पूरी नहीं होतीं। उनके लिए राजनीति और आगे-पीछे की बातें भी सोचना राजा का धर्म है। यह तो ठीक है कि शरणागत राजपूत बाला के धर्म की रक्षा की जाय। परन्तु कैसे? दिल्लीपति का कोप हमारे ऊपर बढ़ता ही जाता है। फ़रमान पर फरमान आते हैं और हम टाल टूल करते जाते हैं। जज़िया के विरुद्ध हमने पत्र लिखकर बादशाह को नाराज कर दिया है। शाही मर्ज़ी के विरुद्ध हमने चित्तौर'की मरम्मत कराई और कई ठिकाने छीन लिये हैं। मथुरा से भागे हुए गुसांईयों को हमने शरण दी है। अब जो हम बादशाह की बेगम को हरण करेंगे तो निश्चय ही उसका हम पर पूरा कोप होगा, और वह दल-बल सहित हम पर चढ़ दौड़ेगा। तब क्या हम उसका मुकाबिला कर सकेंगे। मुझे तो ऐसा दीखता है कि शाही सेना क्षण भर में सारे'मेवाड़'को आनन-फानन तबाह कर देगी। हमारे गाँव लूटे और जला दिये जावेंगे। स्त्रियों को बे-आबरू किया जावेगा। लहलहाती फस्लें नष्ट कर दी जावेंगी और मेवाड़ की वीर भूमि अपने वीरों के

रक्त से लाल हो जायगी। मेवाड़ पर यह विपत्ति केवल एक बालिका के लिए लाना क्या बुद्धिमानी की बात होगी ?

रावत केसरीसिंह—मर्जी पाऊँ तो अर्ज करूँ। सेवक की दृष्टि में कर्तव्य-पालन के लिए हानि-लाभ नहीं देखा जाना चाहिये। सिद्धान्त पर मर मिटना वीरो की परिपाटी है। लोहू और लोहा, यही तो राजपूतो की सम्पत्ति है और मृत्यु उनका व्यवसाय। महाराज, इससे राज-नीति हमें बचा नहीं सकती। रही आलमगीर के आक्रमण की बात। सो महाराज वह तो आज नहीं तो कल होगा ही। बादशाह बहाना खोज रहा है और मेवाड़ उसकी आँखो मे शूल सा चुभ रहा है। वह मेवाड़ को विध्वंस करेहीगा और एक बार हम उससे लोहा लेंगे ही। वह कल न सही आज ही सही।

राणा—(मुस्करा कर) यह तो सत्य है। परन्तु अभी हमारी तैयारी में कमी है। अपनी तैयारी होने तक यथा-सम्भव युद्ध को टालना हमें उचित है।

कुंवर भीमसिंह—श्रीमानो की आज्ञा पाऊँ तो अर्ज करूँ। हम युद्ध को निमन्त्रण नहीं दे रहे। न किसी पर अत्याचार कर रहे हैं। हम केवल अन्याय और अत्याचार का विरोध कर रहे हैं। यह भी हम न करें तो हमारा राजपूती जीवन ही धिक्कार के योग्य है।

राणा—तो आप सब सरदारों की यह राय है कि राजकुमारी की प्रार्थना स्वीकार कर ली जाय।

सब—अवश्य।

राणा—चाहे भी जिस मूल्य पर!

सब—(तलवारें खींचकर) यह लोहा राजपूतों का धन है, इसी के मूल्य पर।

राणा—(तलवार सूंघकर) शरणागत अभय। ब्राह्मण, राजकुमारी से जाकर कह दो कि हम प्राण देकर उसकी रक्षा करेंगे।

अनन्त मिश्र—धन्य महाराणा, धन्य क्षत्रियवीर, धन्य वीरेन्द्र (आगे बढ़कर मोतियों की माला राणा के गले में डालकर) आपकी जय हो। महाराज, राजकन्या तन, मन से आपको वरण कर चुकी है। यद्यपि रूपनगर का घराना आपके समक्ष अति साधारण है, फिर भी महाराज, वह पवित्र सोलंकियो की गद्दी है। उस कुल में अभी दाग़ नहीं लगा है। राजकन्या चारुमती रूप-गुण-शील मे सब भाँति श्रीमानों के योग्य है—अब आप चलकर राजकुमारी को विधिवत् ब्याह कर अपनी सेवा में लें। जिससे धर्मपूर्वक आप उसकी रक्षा के अधिकारी हों।

सब—साधु! साधु! यह प्रस्ताव बहुत उत्तम है।

राणा—(गम्भीरता से) परन्तु ब्राह्मण देवता ! क्या यह प्रस्ताव कुमारी ने विपत्ति मे पड़ कर किया है ?

अनन्त मिश्र—नहीं श्रीमान् ! जिस वीर की यशोगाथा राजपूताने के घर-घर गाई जाती है, और जिनके प्रताप का डंका वीर भूमि को जाग्रत कर रहा है, जो राजपूत जाति के मुकुट रत्न हैं। उन्हे पाकर कौन बाला न धन्य होगी। महाराज, वह राजपूत बाला मन-वचन से आपकी महिषी हो चुकी। अब आप देवता और अग्नि के सन्मुख धर्म-पूर्वक उसे अपनी पत्नी बनावें।

राणा—(सरदारों से) आप सब का इस सम्बन्ध मे क्या मत है ?

रावत मानसिंह—(हाथ जोड़कर) अन्नदाता ! राज-कन्याओ को हरण करके रानी बनाना तो राजपूतो का सनातन व्यवहार है। राजकन्या अब श्रीमानों को छोड़ जायगी कहाँ।

राणा—(कुछ देर मौन रहकर) अच्छा, अब एक बात विचारने की रह गई।

रावल समरसिंह—वह क्या महाराज।

राणा—बादशाह अपनी ५० हज़ार सेना लिये रूपनगर की कुमारी को व्याहने आ रहा है। अब हम रूपनगर जायँ तो उदयपुर को अरक्षित नहीं छोड़ सकते और यदि हम सारी सेना लेकर भी जायँ और शाही सेना से मुठभेड़ हो जाय और कदाचित् हम काम आवें

तब राजकुमारी की रक्षा का क्या उपाय होगा। वह तो फिर भी बादशाह के हाथ पड़ रहेगी।

माधवसिंह—हमे ऐसा उद्योग .करना चाहिए कि बादशाह की सेना के रूपनगर पहुँचने के पहिले ही—हम रूपनगर से कुमारी का उद्धार करके लौट आवें।

राणा—यह तो असम्भव है। आज चौदस है पंचमी को विवाह का मुहूर्त है। हम यदि रात दिन कूंच करें तो ४ दिन में पहुंच सकते हैं। परन्तु समस्त सेना को लेकर इस प्रकार धावा मारना हो ही नहीं सकता—रास्ता ऊबड़ खाबड़ और दुरूह है।

दीवान फ़तहसिंह—एक युक्ति है।

राणा—वह क्या ?

दीवान फ़तहसिह—श्रीमान् थोड़ी सी सेना लेकर रूपनगर जाकर कुमारी को व्याह लावें, और कोई वीर सरदार मेवाड़ी सेना को लेकर रूपनगर और दिल्ली मेवाड़ के तिराहे पर शाही सेना को रोक रखे।

सब—यह युक्ति बहुत उत्तम है।

राणा—परन्तु कौन ऐसा वीर है—जो इतने अल्प काल मे ऐसे संकट को सिर पर ले। (सब सन्नाटा मारते हैं)

राणा—क्या कोई वीर सरदार इस सेना की सरदारी स्वीकार कर सकता है।

(सब सन्नाटे में रह जाते हैं)

कुँवर भीमसिंह—(खड़े होकर) महाराज, यदि मेवाड़ में सभी सरदार वचनशून्य हैं तो इस सेवक को आज्ञा······

रत्नसिंह—अन्नदाता की जय हो। यह सेवा मैं करूँगा।

(सब धन्य-धन्य कहते हैं)

राणा—रत्नसिंह, तुम इस अल्पवय मे यह असाध्य कार्य करोगे? नहीं मैं तुम्हे यह जोखिम का कार्य नही दे सकता।

रत्नसिंह—दुहाई अन्नदाता! चूड़ावतो का यह जन्मसिद्ध अधिकार है। महाराज, मैं बीड़ा उठाता हूँ।

राणा—परन्तु वीरवर, इस काम में बहुत उत्तरदायित्व है।

रत्नसिंह—मैं समझता हूँ महाराज!

राणा—शत्रु बहुत प्रबल है, उसकी सेना अनगिनत है।

रत्नसिंह—सिंह गीदड़ो की भीड़ की चिन्ता नहीं करते।

राणा—हमारी सेना बहुत थोड़ी है और उसे तैयारी का समय बिल्कुल नहीं है।

रत्नसिंह—हमारा सदुद्देश्य और तलवार यही काफी है।

राणा—परन्तु सुनो। कल्पना करो तुम बादशाह की सेना को न रोक सके, तो हमारा सभी प्रत्यन्त निष्फल होगा।

रत्नसिंह—(तलवार छूकर) महाराज, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक श्रीमान् कुमारी को व्याह कर सकुशल उदयपुर न लौटेंगे मैं शाही सेना को आगे न बढ़ने दूंगा—न मैं मरूँगा, न गिरूँगा।

सब—धन्य वीर! धन्य!

राणा—तुम्हारा साहस और सत्यव्रत धन्य है। परन्तु वीर! मैं तुम्हे ऐसे खतरे का काम सौंपते संकोच करता हूँ।

रत्नसिंह—तब मैं अभी यहीं अपना सिर अर्पण करूँगा। महाराज! यह मेरा वीर व्रत है।

राणा—अच्छी बात है। तुम्हारा वीर व्रत अटल रहे। आओ मैं तुम्हे समस्त मेवाड़ी सैन्य का सेनापति अभिषिक्त करता हूँ।

(अभिषेक की सामग्री आती है। राणा रत्नसिंह को सेनापति का पद देकर अपनी तलवार उसकी कमर में बाँधते हैं। सब धन्य-धन्य कहते हैं।)

राणा—बस! अब समय कम और कार्य बहुत है। कल प्रातःकाल ही एक प्रहर रात्रि रहे हमारा कूंच होगा। कुमार जयसिंह और भीमसिंह उदयपुर की रखवाली करेंगे। सोलंकी दलपत और झाला सुलतानसिंह रत्नसिंह के साथ मेवाड़ी सैन्य के साथ रहेंगे। राव केसरीसिंह और राठौर जोधासिंह हमारे साथ चलेंगे। जाओ ब्राह्मण, कुमारी को सन्देश दो। दीवान जी! ब्राह्मण देवता को यथेष्ट दान मान से सम्मानित करके सुरक्षा के साथ विदा करो।

(पर्दा बदलता है।)

छठा दृश्य

(स्थान—उदयपुर। सोलंकी दलपत के महल का प्रान्त भाग। रत्नसिंह और उसकी भावीपत्नी सौभाग्यसुन्दरी। समय—सन्ध्याकाल।)

सौभाग्यसुन्दरी—आपकी जय हो ! जाइये।

रत्नसिंह—एक दम बिदा, कुमारी ! अभी हमारे मिलन की ऊषा का उदय भी नहीं हुआ और विदा की घड़ी आ गई।

सौभाग्यसुन्दरी—यही तो राजपूती जीवन है। आप विजयी होकर शीघ्र लौटिये।

रत्नसिंह—(हँसकर) इसकी बहुत कम आशा है। हमारी शक्ति बहुत कम है और शत्रु अत्यन्त प्रबल है। फिर हमारे सिर पर अत्यन्त गुरुतर भार है।

सौभाग्यसुन्दरी—आप वीर हैं, आपको भय क्या है।

रत्नसिंह—कुछ नहीं, कुमारी ! मैं परीक्षा में उत्तीर्ण होऊँगा।

सौभाग्यसुन्दरी—कैसी परीक्षा ?

रत्नसिंह—भूल गई, तुम मेरी वीरता का प्रत्यक्ष प्रमाण चाहती हो।

सौभाग्यसुन्दरी—वह मैं पा चुकी।

रत्नसिंह—कैसे ?

सौभाग्यसुन्दरी—आपने यह कठिन बीड़ा उठाया, इसी से।

रत्नसिंह—इससे क्या ? विजय करूँ तो बात।

सौभाग्यसुन्दरी—क्षत्रियों की जय-पराजय दोनो ही विजय है।

रत्नसिंह—कैसे कुमारी ?

सौभाग्यसुन्दरी—क्षत्रिय वीर तो आन पर जूझते हैं वे मर कर अमर होते है—यह तो आप जानते ही हैं। मैं मूर्खा कहाँ तक कहूँ।

रत्नसिंह—तो जाऊँ कुमारी ! विदा।

सौभाग्यसुन्दरी—जाइये आप ! (आँखों में आँसू भरकर) हम फिर मिलेंगे।

रत्नसिंह—शायद यहाँ या वहाँ।

सौभाग्यसुन्दरी—(आँसू गिराकर) ऐसा न कहिए।

रत्नसिंह—(हँसकर) यह क्या? परीक्षा तो कठिन ही होती है कुमारी !

सौभाग्यसुन्दरी—दासी का अपराध क्षमा करें।

रत्नसिंह—आह वीरबाला ! तुम्हारी जैसी क्षत्रिय कन्याएँ ही पुरुषों को वीर बनाती हैं, परन्तु······

सौभाग्यसुन्दरी—परन्तु क्या······

रत्नसिंह—कहूँ ?

सौभाग्यसुन्दरी—कहिए।

रत्नसिह—मेरी एक इच्छा थी।

सौभाग्यसुन्दरी—क्या ?

रत्नसिंह—जाने से प्रथम······

सौभाग्यसुन्दरी—क्या ?

रत्नसिंह—एक बार······

सौभाग्यसुन्दरी—कहिये ?

रत्नसिंह—तुम्हे मै प्रिये कहकर पुकारूँ ।

सौभाग्यसुन्दरी—(लजाकर) पुकारिए ।

रत्नसिंह—बिना अधिकार प्राप्त किए ?

सौभाग्यसुन्दरी—अधिकार कैसा ?

रत्नसिंह—पत्नी का ।

सौभाग्यसुन्दरी—अधिकार तो प्राप्त है । मैं आपकी मन-वचन से दासी हूँ ।

रत्नसिंह—ठीक है, पर धर्म से नहीं ।

सौभाग्यसुन्दरी—क्यों ? मेरा आपका वाग्दान हुआ है । मैं धर्म से आपकी हूँ ।

रत्नसिंह—फिर भी विधि तो नही हुई ।

सौभाग्यसुन्दरी—वह भी समय पर हो जायगी ।

रत्नसिंह—अब समय नही है, कुमारी !

सौभाग्यसुन्दरी—आप इतने कातर न हों ।

रत्नसिंह—सुनो कुमारी !

सौभाग्यसुन्दरी—कहिए ।

रत्नसिंह—मैं क्षत्रियकुमार हूँ ।

सौभाग्यसुन्दरी—हाँ ।

रत्नसिंह—और तुम क्षत्रिय-बाला ।

सौभाग्यसुन्दरी—हाँ ।

रत्नसिंह—तुम मेरी वाग्दत्ता हो।

सौभाग्यसुन्दरी—हाँ।

रत्नसिंह—क्या तुम मुझे स्वीकार करती हो ?

सौभाग्यसुन्दरी—मन-वचन-कर्म से।

रत्नसिंह—(लड़खड़ाती जबान से) और प्यार भी।

सौभाग्यसुन्दरी—(नीचा सिर करके) अपने प्राणों से बढ़कर।

रत्नसिंह—कुमारी, यह सूर्य अस्त हो रहे हैं।

सौभाग्यसुन्दरी—हाँ।

रत्नसिंह—यह सुन्दर मेघों के बीच प्रकाशमान नक्षत्र शुक्र है।

सौभाग्यसुन्दरी—है।

रत्नसिंह—वायु शीतल मन्द सुगन्ध बह रहा है।

सौभाग्यसुन्दरी—बह रहा है।

रत्नसिंह—हमारे हृदयों में प्रेम और त्याग की पवित्र अग्नि जल रही है।

सौभाग्यसुन्दरी—जल रही है।

रत्नसिंह—यह क्षत्रिय पुत्र इस देह को बलिदान करने रणयात्रा पर जा रहा है।

सौभाग्यसुन्दरी—हमारा सम्बन्ध देह ही से नहीं, आत्मा से भी है।

रत्नसिंह—अवश्य, पर देह ही उसका माध्यम है। धर्म विधि देह के ही लिए है।

सौभाग्यसुन्दरी—मैं मूर्खा हूँ।

रत्नसिंह—तुम देवी हो, यही समय है।

सौभाग्यसुन्दरी—कैसा ?

रत्नसिंह—आओ, हम परस्पर आत्मा का विनिमय करें। इसी सूर्य, नक्षत्र, आकाश, हृदयाग्नि और वायु की साक्षी में। निकट आओ।

सौभाग्यसुन्दरी—(निकट आकर) सब प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष देवताओं के सन्मुख मैं इस अधम तन-मन को आपके अर्पण करती हूँ।

रत्नसिंह—और सब प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष देवताओं के सन्मुख मैं तुम्हारा आत्म-दान ग्रहण करता हूँ। तुम अब से मेरी प्रिय पत्नी हुईं।

सौभाग्यसुन्दरी—और आप मेरे प्राणाधार पति।

रत्नसिंह—प्रिये !

सौभाग्यसुन्दरी—प्राणधन !

रत्नसिंह—ओह ! मैं कृतकृत्य होगया।

सौभाग्यसुन्दरी—मैं धन्य हो गयी।

रत्नसिंह—अब जीवन-मरण मेरे लिए खेल है।

सौभाग्यसुन्दरी—यही राजपूती जीवन की शोभा है।

रत्नसिंह—अब जाऊँ प्रिये, विदा।

सौभाग्यसुन्दरी—विदा प्राणनाथ।

रत्नसिंह—हम फिर मिलेंगे।

सौभाग्यसुन्दरी—अवश्य मिलेंगे।

रत्नसिंह—इस जन्म में अथवा उस जन्म मे।

सौभाग्यसुन्दरी—कीर्ति के पुल पर होकर।

रत्नसिंह—मैं अपना कर्त्तव्य पालन करने जाता हूँ। तुम अपना कर्त्तव्य पालन करना।

सौभाग्यसुन्दरी—करूँगी।

रत्नसिंह—इसी अल्पवय मे! आशा प्रेम और आकांक्षाओ से परिपूर्ण सुलगते हुए हृदय को लेकर?

सौभाग्यसुन्दरी—निश्चय स्वामी!

रत्नसिंह—बहुत कठिन है प्रिये!

सौभाग्यसुन्दरी—क्षत्रियबाला के लिये नहीं।

रत्नसिंह—तब विदा।

सौभाग्यसुन्दरी—विदा।

रत्नसिंह—स्मरण रहे, अपना कर्त्तव्य।

सौभाग्यसुन्दरी—निश्चिन्त रहिए।

रत्नसिंह—(जाता-जाता उलट कर कुमारी को आलिङ्गन करता है फिर कुछ देर बाद) अब चला प्रिये, कर्त्तव्य का ध्यान रखना।

सौभाग्यसुन्दरी—(रोकर) दासी पर इतना अविश्वास?

रत्नसिंह—(आँसू पोंछकर) अविश्वास नही। परन्तु ....
अच्छा विदा प्रिये!

सौभाग्यसुन्दरी—विदा प्राणेश्वर!

(रत्नसिंह तेजी से जाता है और सौभाग्यसुन्दरी उस भूमि पर जहाँ रत्नसिंह खड़ा था, लेट कर फूट-फूट कर रोती है)

(पर्दा गिरता है)

सातवाँ दृश्य

(स्थान—उदयपुर । सोलंकी दलपत का घर । सौभाग्यसुन्दरी अकेली छज्जे में खड़ी, मैदान में सुसज्जित सेना को देख रही है । समय—प्रातःकाल)

सौभाग्यसुन्दरी—(स्वगत) यही तो राजपूती शान है। राजमहल का यह विशाल प्राङ्गण वीरो से भरपूर होकर कैसा दैदीप्यमान हो रहा है। चपल घोड़े जैसे धीरज खो रहे हैं। कब मालिक का संकेत हो और वे अपनी उछलती चाल का रंग दिखावें। वीरों के शस्त्र प्रभात की इस मनोरम धूप मे किस भाँति चमक रहे हैं। वह मेरे प्राणों के धन श्वेत घोड़े पर सवार सेना का निरीक्षण कर रहे हैं। उनके कण्ठ का वह मुक्ताहार कैसा प्यारा लग रहा है। कल जब उन्होने मुझे छुआ तो जैसे जीवन का नया अध्याय प्रारम्भ होगया। आज यह प्रभात कैसा मनोरम दीख रहा है। ऐसा ही तो जीवन का प्रभात भी होता है। (विभोर होकर) प्रिये ! प्रिये ! कैसा प्यारा शब्द था। सुनकर रोम-रोम पुलकित हो गया। इच्छा होती है, बारम्बार वह शब्द सुनूँ। वही शब्द, वही मधुर संगीत स्वर से भी अधिक मधुर स्वर। (चौंककर) परन्तु…… .. ...

हायरे राजपूत जीवन ! (आँसू पोंछ कर) नहीं। आँखों में आँसू भरकर मुझे अपशकुन नहीं करना चाहिए। पृथ्वी और आकाश के देवता उनकी रक्षा करेंगे। यह देखो वे इसी ओर को कुछ संकेत कर रहे हैं। देखो घोड़े पर झुककर उन्होने क्या कहा। यह कौन है ! अरे, यह तो उनका प्रियभृत्य गुलाब है। यह भी गर्दन टेढ़ी करके मेरी ओर को देख रहा है। लो वह इधर ही को चला। यह आ रहा है वह। स्वामी ने मेरे लिए कुछ सन्देश भेजा है। मेरे स्वामी ने। कल उन्होंने कथा था—प्रिये ! प्रिये ! ओफ।

(आनन्दविभोर होकर चुप हो जाती है। कक्ष में गुलाब आता है।)

गुलाब—जुहार हाड़ी रानी !

रानी—ठाकुर, कैसे आए हो ?

गुलाब—स्वामी का एक सन्देश है रानी ?

रानी—क्या सन्देश है, कहो।

गुलाब—वे कूँच कर रहे हैं।

रानी—उनकी यात्रा शुभ हो। वे विजयी होकर लौटें।

गुलाब—परन्तु······

रानी—परन्तु क्या ?

गुलाब—उन्होने कहा है।

रानी—क्या कहा है ?

गुलाब—कैसे कहूँ ?

रानी—कहो ठाकुर।

गुलाब—कहा है, इस काल युद्ध से जीतेजी बचकर आना सम्भव नहीं है।

रानी—क्षत्रिय को वीरगति प्राप्त होने से बढ़कर सौभाग्य क्या है।

गुलाब—परन्तु वे द्विविधा में पड़े हैं।

रानी—द्विविधा ? युद्ध यात्रा के समय क्षत्रिय को द्विविधा ?

गुलाब—वे रात भर द्विविधा मे रहे।

रानी—छीः छीः रात भर ? क्या द्विविधा है, सुनूँ तो मैं।

गुलाब—आपकी द्विविधा है रानी !

रानी—मेरी द्विविधा कैसी ?

गुलाब—वे कहते हैं, आप अभी युवा हैं, कच्ची उम्र है, संसार अभी देखा नही है। यदि कुछ उल्टा-सीधा होगया तो आप कैसे कठिन क्षत्रिय-बाला का व्रतपूर्ण कर सकेंगी।

रानी—क्यों ? क्या मैं क्षत्रिय-बाला नहीं हूँ।

गुलाब—आपकी यह आयु आनन्द उपभोग की है।

रानी—पर क्षत्रिय-बाला जब चाहे आत्मोत्सर्ग कर सकती है। उनसे कहो वे निश्चिंत होकर शत्रु से लोहा लें और अपना कर्त्तव्य-पालन करें। मैं अपना कर्त्तव्य-पालन करूँगी।

गुलाब—मैंने समझाया था रानी जी, पर वे निरन्तर तुम्हारी ही चिन्ता कर रहे हैं।

रानी—छीः, युद्ध काल में स्त्री की चिन्ता।

गुलाब—वे प्रमाण चाहते हैं।

रानी—कैसा प्रमाण ?

गुलाब—जिसे पाकर वे आपकी ओर से निश्चित होकर शत्रु से लोहा ले सकें।

रानी—(विचार कर) ऐसा प्रमाण चाहते हैं ?

गुलाब—हाँ, रानी, आपको उनकी द्विविधा दूर करनी होगी।

रानी—(कुछ देर गम्भीर मनन करके) अच्छा, मैं तुम्हे प्रमाण देती हूँ, उसे अपने स्वामी को देकर कहना कि यह हाड़ी रानी का प्रमाण है, अब निश्चित होकर शत्रु से युद्ध करें।

गुलाब—जो आज्ञा रानी जी।

रानी—ठाकुर तनिक सावधान हो। तुम्हारी तलवार कैसी है देखूँ ?

गुलाब—(कुछ डरकर तलवार देता हुआ) वह अति साधारण है रानी जी।

रानी—फिर भी राजपूत की है। इसने बड़े-बड़े काम किये होंगे। क्यों ? तुम तो वीरवर के सेवक हो।

गुलाब—यह तलवार उन्हीं की दी हुई है रानी जी, उनके बाल-काल में सेवक ने इसी तलवार से उन्हें तलवार चलाना सिखाया है।

रानी—(तलवार की धार परख कर) पानीदार चीज है। अच्छा, तो लो प्रमाण, अपने स्वामी को दे देना। (बिजली की भाँति तेजी से भरपूर हाथ गर्दन पर मारती है, सिर कटकर धरती में गिर पड़ता है, धड़ झूमता है। क्षण भर में घर के लोग जमा हो जाते हैं। गुलाब हक्का-बक्का खड़ा रह जाता है।)

(पर्दा गिरता है)

आठवाँ दृश्य

(स्थान—रूपनगर। चामुण्डा के मन्दिर का बाहरी भाग। समय—प्रातःकाल। स्त्री-पुरुष आ-जा रहे हैं। मन्दिर में से होम की ध्वनि आ रही है। ब्राह्मण वेद पाठ कर रहे हैं। एक ओर से दो यवन सैनिक आकर चबूतरे पर बैठ जाते हैं। दूसरी ओर से विक्रम सोलंकी और दुर्जन हाड़ा बातें करते आते हैं।)

विक्रम—मैं कहे देता हूँ कि जब तक शरीर में प्राण हैं मैं यह ब्याह नहीं होने दूँगा।

दुर्जन—क्या करोगे तुम ?

विक्रम—इस तलवार की धार का रस······

दुर्जन—रहने दो तलवार, बादशाह की ५० हजार सेना के सामने तुम्हारी तलवार क्या करेगी ? फिर जब राजा ही अपना शत्रु है।

विक्रम—कौन उस छोकरे को राजा कहता है, राजा मैं हूँ।

दुर्जन—यों तो मैं भी कह सकता हूँ सेनापति मैं हूँ।

विक्रम—तुम रूपनगर के सेनापति हो ही, दुष्ट राजा ने तुम्हे पदच्च्युत कर दिया तो इससे क्या ?

दुर्जन—तुम्हारे राजा कहने ही मे क्या सार है। (निराश होकर) हमारी शक्तियों सीमित है। हम कुछ न कर सकेंगे।

विक्रम—अपने प्राण तो दे सकेंगे।

दुर्जन—तुमने क्या सोचा है ? सुना है, शाही सेना आजकल में आ पहुँचेगी।

विक्रम—हमने गुप्त रूप से वीरो का संगठन किया है। दो हज़ार राजपूत मरने मारने को तैयार हैं।

दुर्जन—वे क्या बादशाह की ५० हज़ार सेना से मुकाबिला कर सकेंगे ?

विक्रम—(कान में कुछ कह कर) समझे ! हमे क्षण-क्षण पर आशा है।

दुर्जन—(आश्चर्य से) क्या सच ?

विक्रम—(धीरे से) अनन्तमिश्र को गये आज सातवाँ दिन है।

दुर्जन—तब तो आशा होती है।

विक्रम—चलो फिर, उसी भग्न मन्दिर मे गुप्तमन्त्रणा होगी। सब लोग पहुँच गये होगे।

दुर्जन—चलो। (चौंककर) हैं, मन्दिर के चबूतरे पर ये यवन सैनिक कौन है ?

विक्रम—क्या शाही सेना आ पहुँची ?

दुर्जन—दुष्ट स्त्रियो को घूर रहे हैं।

विक्रम—उनका अपमान कर रहे है। (दोनों आगे बढ़ते हैं)

विक्रम—(सैनिकों से) कौन हो तुम ?

एक सैनिक—(दृढ़ता से) इतना भी नहीं देख सकते, इन्सान हैं।

विक्रम—यहाँ क्यों बैठे हो, यह मन्दिर है। उठो चलते फिरते नजर आओ।

दूसरा—(हँसकर) चले जावेंगे। बैठे हैं, कुछ तुम्हारा लेते तो नहीं।

विक्रम—यहाँ बैठने का तुम्हारा काम क्या है ?

पहला सैनिक—ज्यादा कुछ नहीं, जरा दीदारबाजी।

विक्रम—(गुस्से से) मन्दिर में दिल्लगी। उठो यहाँ से।

सिपाही—अपना काम देखो तुम लाल पीले न बनो वरना हमारी जबान और तेग साथ ही चलती है।

विक्रम—(तलवार खींचकर) तब देखें, तुम्हारी तेग की बानगी।

सिपाही—(तलवार सूंतकर) देख रे काफिर......

दुर्जन हाड़ा—यहाँ नहीं विक्रमसिंह, यह देवी का स्थान है।

सिपाही—हम शाही बन्दे हैं। हमें परवा नहीं, शाही बन्दे से गुस्ताखी करने का मजा चखो। (तलवार का वार करता है)

विक्रम—बादशाह का बड़ा डर दिखाया। तुम ऐसे कितने शाही बन्दो को काट फैंका। (पैंतरा बदलता है)

सिपाही—तुम जैसे काफिर को मारने का सवाब है, ले। (जनेऊ पर वार करता है।)

विक्रम—(वार बचाकर काट करता हुआ) तो ले अभागे मर।

दूसरा सिपाही—(तलवार सूंतकर) खबरदार !

दुर्जन हाड़ा—(तलवार सूंतकर) ख़बरदार।

(चारों में तलवार चलती है। भीड़ इकट्ठी हो जाती है)

भीड़ में से एक आदमी—इन्होंने मुझे लूट लिया, २॥ सेर मिठाई खा गये और पैसा माँगा तो गालियाँ दीं।

दूसरा आदमी—अभी-अभी इस डाढ़ीवाले ने मेरा डुपट्टा छीना है और मारा है।

विक्रम—(तलवार चलाता हुआ) डाकू हो तुम।

सिपाही—(तलवार घुमाता हुआ) काफ़िर कुत्ता।

(लड़ते-लड़ते एक सिपाही मारा जाता है, दूसरा भाग जाता है।)

विक्रम—(तलवार पोंछता हुआ) चलो हाड़ा! आज रात को जाने क्या होगा।

(दोनों तेज़ी से जाते हैं। भीड़ भाँति-भाँति की बातें करती हुई इधर-उधर जाती है। लाश वहीं पड़ी रह जाती है।)

नवाँ दृश्य

(स्थान—उदयपुर के राजमहल का प्रशस्त प्राङ्गण । सब सेना सुसज्जित खड़ी है रत्नसिंह अन्यमनस्क घोड़े पर सवार कुछ सोच रहे हैं । सेना-नायक आज्ञा की प्रतीक्षा में है । शोर हो रहा है घोड़े हिन-हिना रहे हैं । समय—प्रातःकाल ।)

रत्नसिंह—जीवन का सर्वोत्कृष्ट भाग यौवन है, परन्तु क्षत्रिय के लिये यौवन सब से अधिक खतरनाक है । वह विपत्तियों के बादलों मे घूमता है, मृत्यु को वरण करता है । जीवन को चुनौती देता है, लोहू और लोहे के खेल खेलता है । (कुछ सोचकर) कैसा मधुर कोमल सुख-स्पर्श ! कैसी मोहक कण्ठध्वनि ! उसने कहा था, प्राण-नाथ ! प्राणधन ! अब कब ये कान सुनेंगे (चौंककर) काल की भाँति दिल्लीश्वर बढ़ा आ रहा है मुझे उससे युद्ध नहीं करना है उसे रोकना है । मुझे मरना नहीं है जीवित रहना है । युद्ध में क्षत्रिय का मरना तो बहुत आसान है परन्तु जीवित रहना कठिन ! बहुत ही कठिन !! परन्तु मैं जीवित रहूँगा । कार्य सिद्धि तक तो अवश्य । यह मेरी प्रतिज्ञा है । मैं सत्यव्रती चूंड़ाजी का वंशधर हूँ और अपने वीर पिता का प्रतिनिधि हूँ । (कुछ सोचकर) परन्तु यदि युद्ध में मृत्यु को आलिङ्गन करना पड़ा । यदि विजयलक्ष्मी प्रसन्न न हुई तो ?

तो यह अस्फुटित कुसुम कली के समान कुमारी! अछूते पुष्प के समान कोमल और मृदुल कुमारी क्या कठोर क्षत्रिय व्रत का पालन कर सकेगी? हाय! क्यो मैंने उसके कौमार्य व्रत को भंग किया! वाग्दान ही था न परन्तु अब! (सेना में जय-जयकार का घोष होता है) लो महाराणा की सेना कूंच कर गई। एक पहर दिन चढ़ गया और मैं विमूढ़ बना सोचिन्तन कर रहा हूँ परन्तु गुलाब अभी नहीं आया। (चौंककर) कौन गुलाब?

राव केसरीसिंह—नहीं, मैं हूँ सेनापति! अब हमे कूंच करना चाहिये, सेना अधीर हो रही है।

रत्नसिंह—अभी कूंच होगा रावजी! (चारों तरफ देखकर) गुलाब नहीं आया। (चौंककर) वह आ रहा है परन्तु उसके हाथ में क्या है। (निकट आने पर) स्त्री का सिर? हा परमेश्वर! यह क्या है?

(गुलाब रानी का सिर लिये आता है)

गुलाब—लीजिये, महाराज प्रमाण!

रत्नसिंह—कैसा प्रमाण!

गुलाब—हाड़ी रानी का प्रमाण! स्वामी, उन्होने इसे देते हुए कहा—कि वीर क्षत्रिय को युद्ध के अवसर पर स्त्री का चिन्तन न करना चाहिए। स्वामी यदि पत्नी का अविश्वास करे तो धरती किसके बल ठहरे! महाराज, उन्होने अपने हाथ से यह प्रमाण पेश किया है।

रत्नसिंह—(कुछ क्षण आँख फाड़ फाड़ कर सिर की ओर देखकर) लाओ फिर! वीरबाला का यह अमूल्य प्रमाण (सिर को हाथ में लेकर बालों की लट चीर कर गले में लटका लेता है। फिर तलवार ऊँची करके) वीरों, आज हमारे लिये पवित्र दिन है। अब हमारे रक्त की, बाहुबल की और राजपूती जीवन की परीक्षा होगी। तुम में से जिसे जीवन प्यारा हो—अलग हो जाय।

सैनिक—महाराणा जी की जय, श्री एकलिङ्गजी की जय। हम मर मिटेंगे, पर पीछे पैर न देंगे।

रत्नसिंह—(दर्प से) नही, हम मरने नही जा रहे हैं। प्रतिज्ञा करो कि जब तक महाराणा सकुशल रूपनगर से न लौट चले, हम बादशाह को आगे नहीं बढ़ने देंगे।

सब—हम प्रतिज्ञा करते हैं।

रत्नसिंह—हम न मरेंगे, न टलेंगे, न पीछे हटेंगे।

सब—हम प्रतिज्ञा करते हैं।

रत्नसिंह—चलो फिर वीरों! आज हमारी प्यासी तलवारें शत्रु के रक्त का पान करेंगी।

सब—जय, श्री एकलिङ्ग की जय। मेवाड़पति की जय।

(सब जाते हैं। पर्दा गिरता है।)

दसवाँ दृश्य

(स्थान—रूपनगर का एक भग्न मन्दिर। मन्दिर में पचास से ऊपर मनुष्य बैठे मन्त्रणा कर रहे हैं। विक्रम सोलंकी और दुर्जन हाड़ा बीच में बैठे हैं)।

विक्रम—सर्दारो, आज हमें इस रूप में एकत्र होकर गुप्त मन्त्रणा करनी पड़ी, इसका हमें खेद है। परन्तु धर्म और देश की रक्षा के लिये हमे यह काम करना पड़ा। आपको मालूम है कि रूपनगर के राजा ने गद्दी पर बैठते ही राजपूतो की नाक काटनी प्रारम्भ करदी है।

सब—हमारे राजा आप हैं। आप ही रूपनगर के सच्चे राजा हैं।

विक्रम—मैंने सोचा था कि मैं बूढ़ा हुआ, राज काज के खटराग में न पड़ूं। यही ठीक है, इसी से रामसिंह के राजा होने का विरोध न किया। मेरे विरोध करने पर रामसिंह........... ... .

सब—राजा नहीं हो सकता था।

एक—क्या कायर वीरों का राजा हो सकता है?

दूसरा—नहीं। जिस प्रकार गीदड़ सिंहो का राजा नहीं हो सकता।

विक्रम—मित्रों, इस समय हमारी प्रतिष्ठा पर संकट आया है, हमें उसे पार करना होगा।

सब—आपकी आज्ञा से हम आग मे कूद पड़ेंगे।

विक्रम—आपको मालूम है, वादशाह वड़ी भारी सेना लेकर हमारे मुँह मे कारिख लगाने आ रहा है। क्या हम जीते जी राजकुमारी उसे व्याह देंगे।

सब—नहीं-नहीं, कदापि नहीं।

विक्रम—मालूम होता है कि वादशाह निकट आ गया है। अभी उसके दो सैनिकों से हमारी मुठभेड़ हो चुकी है। संकट अव सिर पर है। हमें तैयार रहना चाहिए।

सब—हम तैयार हैं।

विक्रम—मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि समय पर हमें दैवी सहायता मिल जायगी और राजकुमारी की रक्षा हो जायगी।

सब—हम मन, वचन, कर्म से प्राण देने को तैयार हैं।

विक्रम—तव सुनिए, हमे अपने अपने आदमियो सहित किले के निकट ही रहना चाहिए।

सब—ऐसा ही होगा।

विक्रम—संकेत के पॉच स्थल हैं। एक चामुण्डा का मन्दिर, दूसरा हाड़ा का घर, तीसरे अनन्तमिश्र की वाड़ी, चौथा कुमारी का महल, पाचवॉ महल का सिंह द्वार। संकेत मे दो वार शंख वजने पर एक दम महल घेर

लिया जाय और दूसरी आज्ञा की प्रतीक्षा की जाय।

सब—ऐसा ही होगा।

विक्रम—दुर्जन हाड़ा लाल झण्डे से आपको आक्रमण का आदेश देंगे।

सब—बहुत अच्छा।

विक्रम—परन्तु मुझे विश्वास है, विना ही रक्तपात के सब काम हो जावेगे। अच्छा सावधान! विशेष आदेश सरदारों के पास पहुँच जावेंगे। अब आप सब कोई चलकर तैयार रहे। सूर्य छिपते ही भेष वदल कर किले के निकट रहे। किले के समस्त फाटको पर हमारे विश्वस्त सिपाही है, और महल मे सर्वत्र हमारा पहरा है।

सब—विक्रम सोलंकी की जय। राजपूतो की जय।

(पर्दा गिरता है)

ग्यारहवाँ दृश्य

(स्थान—रूपनगर का राजमहल; राजकुमारी का महल। समय—अर्द्ध रात्रि। राजकुमारी चारुमती खिड़की में बैठी अकेली गा रही है। गोद में राजसिंह का चित्र है)

(राग—पीलू)

नहीं आये।
जागत बीती रैन।
भोर भयो आलस के मारे,
झपके पापी नैन।
मैं भोरी बेसुध हो सोई,
वे सपने में आये।
अंक भरूँ पगलूँ-वालि जाऊँ,
चरण बिछाऊँ नैन।
बैरिन नींद गई मैं जागी,
समझी सपने की सब माया।
सोवे सो खोवे, जागे सो पावे,
जग जाहिर ये बैन।
मैंने जाग गँवायो री साजन,
फूटें बैरी नैन।
नहीं आये।
नहीं आये।

(रोती है और दोनों हाथों से मुँह ढँक लेती है निर्मला आती है)

निर्मला—रोने से क्या होगा ?

राजकुमारी—तव तू हँस, हँसने से शायद कुछ हो जाय।

निर्मला—समय आवेगा तव हँसूँगी, अभी काम की बात करो।

राजकुमारी—काम की बातें क्या हैं।

निर्मला—कुछ उपाय सोचना होगा।

राजकुमारी—उपाय कैसा ? शाही सेना परसों यहाँ आ पहुँचेगी। भाई ने तो बादशाह का साला बनने का इरादा पक्का कर ही लिया है। उन्हे इस सिलसिले मे जागीरें मिलेंगी। अब मुझ अवला का रक्षक कौन है ?

निर्मला—रक्षक भगवान हैं। पर हमे रोकर नहीं, बुद्धि लड़ाकर काम करना चाहिये।

राजकुमारी—तू बुद्धि लड़ाकर देख।

निर्मला—एक युक्ति है।

राजकुमारी—क्या ?

निर्मला—उद्यापन व्रत करो।

कुमारी—किसलिये ? सुहाग रहे इसलिए ?

निर्मला—यह बात अभी रहे। अभी तो इसका गूढ़ उद्देश्य यह होगा कि ३ दिन का हमे और समय मिल जायगा। तीन दिन अभी वाकी है। ६ दिन मे कुछ न कुछ हो ही रहेगा।

राजकुमारी—क्या होगा ? वादशाह की विपुल सेना तीन दिन में सारे कुए तालावो का पानी पी जायगी। सारे नगर

का अन्न खा जायगी। इससे तो यही उत्तम है कि मैं आज ही विष खा लूँ। बादशाह मार्ग से लौट जाय।

निर्मला—सुनो! अनन्तमिश्र को उदयपुर गये आज पाँचवाँ दिन है। यदि विघ्न-बाधा न हुई तो वे पहुँच भी लिये और सहायता साथ ले चल भी दिये। ३ दिन में अवश्य राणा आ जावेंगे यह मेरा मन कहता है।

राजकुमारी—भाई मानेंगे?

निर्मला—महारानी उन्हें मना लेगी। मैं महारानी को राजी कर लूँगी।

राजकुमारी—और जो वे न मानें?

निर्मला—तो भारतेश्वरी स्वयं उन्हें हुक्म देंगी। किसकी मजाल है, आलमगीर की मलिका का हुक्म टाल सके।

राजकुमारी—तू भर।

निर्मला—अभी नहीं। तुम्हारे हाथ पीले हो जायँ तब।

राजकुमारी—(फीकी हँसी हँसकर) अरी चिन्ता न कर, सब दुखों की दवा मेरे पास यह है। (विष भरी अँगूठी दिखाती है)

निर्मला—राजकुमारी, तुम जुग-जुग जिओ। मैं जाकर महारानी से कहती हूँ तुम तनिक विश्राम करो।

राजकुमारी—(रोती हुई) अब मैं चिर विश्राम करूँगी सखी!

(आँसू पोंछती है। निर्मला रोती हुई जाती है।)

चौथा अङ्क

——•—○—•——

पहला दृश्य

(स्थान—रूपनगर का राजमहल । राजा रामसिंह और विक्रमसिंह ।
समय—मध्यान्ह ।)

रामसिंह—(धरती में पैर पटक कर) मैं कहता हूँ आपने यह साहस ही कैसे किया ? शाही आदमी को आप ने आव देखा न ताव, खट से कत्ल कर दिया। (कुछ ठहर कर) अब जवाब तो मुझे देना होगा, आपको नहीं। राजा मैं हूँ—आप नहीं। आप क्या सोच रहे हैं काकाजी !

विक्रमसिंह—यही सोच रहा हूँ कि रूपनगर के राजा रामसिंह हैं विक्रमसिंह नहीं।

रामसिंह—सो तो है ही। इसी से मैं पूँछता हूँ कि मेरे विना हुक्म के आपने शाही सिपाही को कैसे क़त्ल किया ?

विक्रमसिंह—कैसे बताऊँ। कोई शाही सिपाही यहाँ हाज़िर होता तो अभी खट से उसका सिर काट लेता।

रामसिंह—यह तो अन्धेर है। अजी मैं पूँछता हूँ क्यों ? किस लिये ?

विक्रमसिंह—यह आपने कब पूॅछा ?

रामसिंह—अच्छा अब सही। कहिए, आपने क्यों उसका सिर काट लिया ?

विक्रमसिंह—वह देवी के मन्दिर के सिंह द्वार पर बैठा स्त्रियों को घूर रहा था। मैंने जब उसे चले जाने को कहा तो वह गुस्ताखी कर बैठा। विक्रमसिंह सोलंकी को यह सहन कहाँ ? झट से तलवार सूॅती और खट से भुट्टा सा सिर उड़ा दिया। बस इतनी ही सी तो बात है महाराज!

रामसिंह—आप हमारे काका हैं—सो क्या मेरे राज मे मनमानी करेंगे।

विक्रमसिंह—तुम राजा हो गये सो क्या अपने बड़े-बूढ़ों को कुछ भी न समझोगे ? धर्म का तिरस्कार करोगे। मर्यादा और नीति सबको धता बताओगे ?

रामसिंह—यह तो ख़ूब रही। आप क्या मुझ से कैफ़ियत तलब करेंगे। मुझ से ? राजा से ?

विक्रमसिंह—क्यों नहीं ? तुम्हे राजा बनाया किसने है, हमी ने न ? अगर तुम सत्य कर्म से राज-काज करोगे तो राजा, नहीं तो जैसे हमने तुम्हे राजा बनाया है उसी तरह राज्य से उतार भी देंगे।

रामसिंह—आप की इतनी मजाल। आप राजा से ऐसी बातें कहते हैं ?

विक्रमसिंह—क्यों नहीं। एक तो मैं राजा का काका, दूसरे मेरी प्यारी यह तलवार जब तक मेरे पास है—निर्भय सत्य कहूँगा। उसे तुम रोक न सकोगे।

रामसिंह—(गुस्से से) नहीं, मेरे राज्य मे.आप मनमानी न करने पावेंगे।

विक्रमसिंह—(गुस्से से) विक्रम सोलंकी के रूपनगर में रहते तुम मनमानी न करने पाओगे।

रामसिंह—मैं राजा हूँ।

विक्रमसिंह—अनीति करोगे तो राजा नही रहने पाओगे।

रामसिंह—मैं आपको गिरफ्तार करता हूँ। (पुकार कर) कोई है ?

(दो सेवक सिपाही आते हैं)

रामसिंह—इन्हे बाँध लो।

विक्रमसिंह—(हँसकर) क्या कहने हैं। (तलवार सूँत कर) जिसमें दम है वह आगे आवे।

(दोनों सिपाही ठिठक जाते हैं)

रामसिंह—बदज़ातों! क्या देखते हो आगे बढ़ो।

विक्रमसिंह—तुम खुद ही क्यों नहीं आगे बढ़ते।

रामसिंह—(तलवार सूँत कर) यही सही। लो राजा के अपमान का फल चखो।

विक्रमसिंह—(वार बचा कर) रामसिंह, वचपन मे मैंने तुझे कितना तलवार चलाना सिखाया था—पर तुझे कुछ न आया। देख, वार इस तरह किया जाता है। (वार करता है—रामसिंह की तलवार झन्ना कर टूट जाती है) कह—सिर काट लूँ या छाती फाड़ डालूँ।

रामसिंह—राजा के अपमान का वदला समय पर लिया जायगा।

(जाता है)

(शार्दूलसिंह कई सिपाहियों के साथ आता है)

विक्रमसिंह—शार्दूलसिह, अभी हमें वहुत से काम करने हैं। कुछ शाही सैनिक किले में ठहर रहे हैं और वादशाह के आने की प्रतीक्षा मे हैं, पर वादशाह अभी तीन दिन की मंजिल पर है, आज वे किसी हालत में पहुँच नहीं सकते, किन्तु विवाह का मुहूर्त तो आज ही है, सावधान रहो। सूर्यास्त के वाद सभी शाही सिपाही क़ैद कर लिये जायँ और महलों के सव द्वार और राहों पर अपने विश्वस्त जनो का पहरा रहे। (कान में कुछ कह कर) ज्यों ही यह संकेत कोई कहे—उसे वेखटके भीतर आने दो। जो यह संकेत न वोले—उसे तुरन्त मार दो। जाओ।

शार्दूलसिंह—जो आज्ञा महाराज।

(शार्दूलसिंह जाता है)

विक्रमसिंह—महाराणा को आज सूर्यास्त तक यहाँ आजाना चाहिये—मुझे ठीक समाचार मिला था—परन्तु वे अभी तक नहीं आये हैं, सूर्यास्त में अब सिर्फ दो घड़ी शेष है। बादशाह को भी आज रूपनगर के सिवाने पर आ जाना चाहिए था। पर वह भी अभी दूर है। यह क्या मामला है। देखूँ आज राजकुमारी की रक्षा कैसे होती है।

(जाता है)

दूसरा दृश्य

(स्थान—नगर के महल का तीसरा भाग। महल में व्याह की धूमधाम हो रही है। सखियाँ चारुमती का श्रृङ्गार कर रही हैं। डाढ़िनें गीत गा रही हैं। समय—सन्ध्या। चारुमती चुपचाप आँसू बहाती हुई बैठी है। निर्मल जड़ाऊ ज़ेवरों का थाल लेकर आती है।)

निर्मल—जड़ाऊ गहने पहनो कुमारी, आज तुम्हारे सुहाग का दिन है।

चारुमती—पहनादे सखी, सुहाग न सही सुहाग का स्वाँग ही सही। लाओ देखूँ तो दुलहिन कैसे सजा करती है। खूब सजा दो, दुलहिन बना दो। (रोती है)

निर्मल—(धीरे से) छीः सुहाग के समय रोती हो सखी ! धीरज धरो। तुम्हीं अधीर होगी तो फिर हम क्या करेंगी ?

चारुमती—अरी कैसे धीरज धरूँ, अभी तक भी राणा नहीं आये।

निर्मल—और न बादशाह की फौज का ही कहीं पता है, शाही सेना का पता लगाने कासिद दौड़े फिर रहे हैं।

चारुमती—मरै वह मुआ ! उनकी तलाश के लिए भी किसी को भेजा है।

निर्मल—काका विक्रमसिंह ने अपने चर लगा रखे हैं। उन्हें आशा है……

चारुमती—आशा, आशा, हाय यह आशा कैसी भारी चीज़ है। परन्तु सखी यह मेरी रक्षा करेगी। (अँगूठी दिखाती है) इसमें हलाहल विष भरा है।

निर्मल—(आँसू भर कर) मरें तुम्हारे दुश्मन, तुम जीओ सखी! (आँसू पोंछ कर धीरे से कान में) इसमें कुछ भेद मालूम होता है।

चारुमती—कैसा भेद ?

निर्मल—न बादशाह आये न राणाजी, कहीं मार्ग में मुठभेड़ हो गई हो तो···

चारुमती—हे परमेश्वर, क्या होने वाला है।

निर्मल—सब ठीक होगा। चुप! वह राजा आ रहे हैं।

(रामसिंह व्यग्र भाव से आता है)

रामसिंह—(स्वगत) बड़ी मुश्किल है। हर जगह कमी ही कमी नज़र आती है। बहुत कोशिश करता हूँ कि सब ठीक-ठाक रहे—मगर जहाँ देखता हूँ, कसर है। बादशाह सलामत अभी नहीं आए। दिन छिप रहा है, विवाह का मुहूर्त निकट आगया। उधर बन्दोबस्त देखता हूँ तो·····(कुछ सोच कर) खैर, देखा जायगा (पुकार कर) कोई है ?

(एक सेवक आता है)

सेवक—महाराज की क्या आज्ञा है ?

रामसिंह—(क्रोध से) कामदार साहेब कहाँ हैं, बदनसीब !

सेवक—(हाथ जोड़कर) सरकार ड्योढ़ियो पर हाजिर हैं।

रामसिंह—तो उन्हे यहाँ ले आ। खड़ा-खड़ा क्या मुझे खायगा ?

सेवक—जो आज्ञा ! (जाता है)

रामसिंह—(चारु से) राजकुमारी, तुम्हे जानना चाहिये कि तुम आज भारतेश्वरी बनने जा रही हो। तुम्हारे भाग्य पर वड़ी-वड़ी राजकुमारियो को डाह होगा। (कुछ रुक कर) हाँ, मैं तुम्हे……

चारुमती—(क्रोध से) चुप रहो भाई……

रामसिंह—(नर्मी से) समझ गया। रूपनगर के राजा को डांटने-डपटने का अब तुम्हे अधिकार हो गया है, तुम ठहरीं सम्राज्ञी, बड़े-बड़े महाराजाओं को डांट सकती हो। (हँसकर) मगर देखना, बादशाह को मुट्ठी में रखना, मुट्ठी में ! (कामदार आता है)

कामदार—सेवक को क्या हुक्म है ?

रामसिंह—सेवक को क्या हुक्म है, तो अभी तुम हुक्म ही की बाट देख रहे हो। अजी, किले पर रोशनी का बन्दो-बस्त हुआ।

कामदार—हो गया हुजूर !

रामसिंह—और बादशाह सलामत की सलामी का।

कामदार—सब ठीक-ठाक है।

रामसिंह—मैंने कहा था न, ज्योंही शाही सवारी की गर्द नजर आए……

कामदार—……किले से दनादन सलामी की तोपें दाग दी जायें।

रामसिंह—बिल्कुल ठीक ! परन्तु अभी तक सलामी नहीं दागी जा रही, क्या बात है ?

कामदार—महाराज, बादशाह की सवारी का पता ही नहीं है।

रामसिंह—(डपट कर) क्यों पता नहीं है यही हम पूँछते हैं—ब्याह का मुहूर्त तो······ (चारु और सखियों की ओर देखकर) ठीक है, इधर तो सब मामला टंच है और उधर तुम कहते हो रोशनी का—सलामी का सब बन्दोबस्त दुरुस्त है।

कामदार—जी हाँ महाराज !

रामसिंह—अब जाकर आँखों से देखूँ तो समझूँ। (जाता है)

निर्मल—बला टली।

चारुमती—कहाँ, अभी बला सिर पर मँडरा रही है।

निर्मल—लो किले पर रोशनी हो रही है। ड्योढ़ियों पर शहनाई बज रही है। राग रंग रच रहे है, परन्तु सुनो, यह क्या ? ड्योढ़ियों पर कुछ हो रहा है। सुनो, सुनो !

(एक धमाका होता है राजसिंह और उनके दो साथी तलवारें सूंते महल में दाख़िल होते हैं। सब स्त्रियाँ हड़बड़ाकर खड़ी हो जाती हैं, चारुमती हर्ष से जड़ हो जाती है।)

निर्मल—क्या मैं समझूं कि रूपनगर का यह महल श्री महाराणा के चरणों से पवित्र हुआ।

राजसिंह—हां, मैं राजसिंह हूँ (इधर उधर देखकर) परन्तु क्या मैं भूल से इधर आ निकला हूँ !

निर्मल—(प्रणाम करके) नहीं महाराज, भाग्य से ही आप इधर आए है ।

राजसिंह—किले पर रोशनी हो रही है । महल मे मंगल गीत गाये जा रहे हैं । राजकुमारी का शृंगार हो रहा है । यह सब क्या है ।

निर्मल—(मुस्करा कर) आज रूपनगर की राजकन्या का व्याह है—महाराज, आगे आइये ।

राजसिंह—(आगे बढ़कर) किसके साथ ।

निर्मल—जिसके तेज और प्रताप से सोई हुई राजपूत शक्ति जीवित हो रही है । जिसकी तलवार की धमक से दिल्लीपति भयभीत रहता है । जो भारत के सब राज-राजेश्वरो का शरण स्थल है उसी मेवाड़पति महा-राणा राजसिंह के साथ । (आगे बढ़कर) समय और अवसर देखकर ही सब कार्य होते हैं महाराज, आज ऐसा ही अवसर है । हाथ दीजिए ।

राजसिंह—क्या कुमारी की भी यही इच्छा है ?

निर्मल—वह श्रीमानों पर प्रकट है ।

राजसिंह—मैं उसे कुमारी ही के मुख से सुना चाहता हूँ ।

निर्मल—महाराज, कुलवती ललनायें मुंह से ऐसे विषयों में कैसे कहे ।

राजसिंह—फिर भी यह प्रसंग ऐसा ही है। परन्तु अभी यह विषय रहे। कुमारी की इच्छा बादशाह की बेगम बनने की नहीं है।

निर्मल—नहीं।

राजसिंह—कुमारी के मुँह से सुनना चाहता हूँ।

निर्मल—कहो सखी, यह लाज का समय नहीं।

चारुमती—(लजा कर) नहीं, मैं आपकी शरण हूँ।

राजसिंह—(तलवार ऊँची करके) शरणागत को अभय। चलो कुमारी, मेवाड़ तुम्हारे लिये प्राण देगा।

निर्मल—यों नहीं महाराज, राजपूत बालाएँ क्या इस तरह पिता का घर त्यागती हैं ?

राजसिंह—तब ?

निर्मल—वीरवर, आपके खड्ग में बल है तो आप रूपनगर की राजकन्या का हरण कीजिए।

राजसिंह—(संकोच से) रूपनगर की कुमारी ने सिर्फ संकट में पड़ कर मेरी शरण चाही है, राजधर्म समझ मैंने शरण दी है। हरण और वरण अलग बात है।

निर्मल—महाराज, आप यह क्या कहते हैं, राजकन्या तनमन से आपको वर चुकी है।

राजसिंह—निरुपाय हो कर।

चारुमती—(रोती हुई) तू क्यों उन से बकवाद करती है, (हाथ जोड़ कर) महाराज, मुझ अल्पमति को क्षमा करें। आप वापस मेवाड़ लौट जायँ।

राजसिंह—और तुम ? तुम मेरी शरणागत हो।

चारुमती—आप से अधिक समर्थ रक्षक मुझे मिल गया है महाराज !

राजसिंह—अधिक समर्थ रक्षक ? वह क्या ?

चारुमती—विष, एक नगण्य बालिका के लिये वीरवर किसी संकट में पड़े, यह मैं नहीं चाहती।

राजसिंह—फिर हमें बुलाया क्यों था ?

चारुमती—कह तो चुकी, वह नादानी थी।

राजसिंह—अब यह नहीं हो सकता, तुम्हे मेवाड़ चलना होगा। उसके बाद तुम्हारी इच्छा होगी…… …

चारुमती—मैं यहीं प्राण त्यागूँगी।

निर्मल—महाराज, क्या कुलवती स्त्रियाँ पति के अलावा और किसी के साथ पिता गृह त्यागती हैं ?

चारुमती—(प्रणाम करके) यह तुच्छ राजकन्या शायद महामहिम राणा के रणवास के योग्य नहीं।

निर्मल—महाराज, यह समय बातचीत मे खोने का नहीं है।

(आगे बढ़कर राणा के दुपट्टे से चारुमती की चूनरी की गाँठ बाँध देती है। सखियाँ गाने लगती है।)

राणा—(ललकार कर) यह मेवाड़ का राणा राजसिंह रूपनगर की कन्या चारुमती को हरण करता है, जिसे रोकना हो रोक ले (कुमारी से) चलो राजकुमारी !

चारुमती—(निर्मला से लिपट कर) सखी, स्त्री होना ही काफी दुर्भाग्य है। फिर उस पर राजपूत कन्या। (रोती है)

निर्मल—(रोती हुई) जाओ सखी, मैं शीघ्र मिलूँगी। (हँस कर) मै कहती थी न, सुहाग का सिंगार।

(तलवार लिये रामसिंह और कई साथी आते हैं)

रामसिंह—मार दो-पकड़ लो (आगे बढ़कर) कौन हो तुम, चोर। पकड़ो इन्हे।

राजसिंह—मैं उदयपुर का राणा राजसिंह हूँ, तुम कौन हो।

रामसिह—(अकचका कर) तुम'''''' 'आप—राना राजसिंह—तुम ' 'आप यहाँ कैसे ?

राजसिंह—तुम कौन हो ?

रामसिंह—ऐं ! मै—हाँ, मैं रामसिह—नहीं, रूपनगर का राजा हूँ। हाँ, आप मेरे महल मे कैसे घुस आए ?

राजसिंह—(हँस कर) तुम्हारी बहन को हरण करने। (तलवार सूंत कर) वार करो पहले।

रामसिह—(सिपाहियों से) मारो-सब मारो। (सब राणा पर टूटते हैं)

दलपतसिंह—(आगे बढ़ कर) अन्नदाता, अलग रहे, इन अभागों को मैं अभी ठीक किये देता हूँ। युद्ध करता है।

(विक्रमसिंह साथियों सहित आता है)

विक्रमसिंह—(तलवार ऊँची करके) जय, महाराणा राजसिंह की जय। महाराज, यही राजपूत कुलाङ्गार रामसिंह है, जिसने बादशाह को राजकन्या व्याहने को बुलाया है।

रामसिंह—(क्रोध से) तुम्हीं इस सब षड्यन्त्र की जड़ हो, तो लो। (तलवार का बार करता है)

विक्रमसिंह—ले मूर्ख, करनी का फल चख। (पैंतरा बदल कर बार करता है। रामसिंह का सिर कट कर दूर जा पड़ता है)

राजसिंह—(हाथ ऊँचा करके) बस युद्ध बन्द करो। (सब हाथ रोक लेते हैं) आपने सम्बन्धी को मार दिया।

विक्रमसिंह—वह इसी योग्य था महाराज, अपनी करनी को पहुँचा। आइए अब आप, इस समय जैसा अवसर है उसी के अनुरूप मैं आपको कन्या दान दूँ।

(दोनों का हाथ मिलाकर आशीर्वाद देता है, राजपरिवार की स्त्रियाँ आती हैं)

चारुमती—(माता को देखकर लिपटकर) माता इस कृतघ्न पुत्री को क्षमा करना।

राजमाता—बेटी, तेरा सौभाग्य अचल रहे। (राजसिंह से) महाराज, राजपूत कन्या का आपने उद्धार कर अपने योग्य ही कार्य किया है। हमसे कुछ भेट भलाई तो बन नहीं पड़ी तथापि यह प्रेमचिन्ह ग्रहण करें। (बहुमूल्य मोतियों की माला गले में डालती है)

राजसिंह—अवसर देखकर ही सब कुछ होता है, अतः अभी तो हम तुरन्त ही जाते है। (विक्रमसिंह से) आपको हम रूपनगर का महाराज स्वीकार करते हैं। (अपनी जड़ाऊ तलवार उनकी कमर में बाँधते हैं)

(सब जय महाराज की। जय मेवाड़पति की जय चिल्लाते हैं, पर्दा गिरता है)

तीसरा दृश्य

(स्थान—रूपनगर और दिल्ली का तिराहा। शाही सेना की छावनी पड़ी है। युद्ध की तबाही के चिह्न इधर-उधर दिखाई पड़ते हैं। बादशाह अपने खीमे में दिलेर खाँ से बातें करते हैं। समय—रात्रि।)

बादशाह—क्या कहा, मेवाड़ की फ़ौज ?

दिलेर खाँ—जी हाँ, जहाँपनाह! वह राना की फौज थी।

बादशाह—मगर हम मेवाड़ पर तो चढ़ाई नहीं कर रहे थे।

दिलेर खाँ—मैंने कहा था हुजूर, फौज के सरदार ने लापरवाही से जवाब दिया, हमें काटकर जहाँ जाना हो चले जाओ।

बादशाह—कौन था वह बदनसीब।

दिलेर खाँ—वह एक कम उम्र नौजवान था। अभी रेखें भीगीं थीं उसकी आँखों में आग, बोली मे तूफान, तलवार में कयामत और झपट मे बिजली थी। वह वहशत का पुतला बना था। उसके गले में एक औरत का कटा हुआ सिर लटक रहा था।

बादशाह—औरत का सिर ?

दिलेर खाँ—जी हाँ, हुजूर! वह मरने के इरादे से आया था, शाही फौज में वह जिधर गया, काई-सी चीरता चला

गया। वह तिल-तिल कट कर गिरा। वहाँ वह शाही बन्दों की लाशो के ढेर पर हमेशा के लिये सोया पड़ा है। उसकी तलवार टूट गई है। मगर उसकी मूँठ उसकी मुट्ठी में अब भी कस कर जकड़ी हुई है।

बादशाह—रूपनगर अव यहाँ से कितनी दूर है ?

दिलेर खाँ—हुज़ूर, तीन दिन की मंजिल और है।

बादशाह—मगर शादी की साइत तो कल है।

दिलेर ख़ाँ—कल तक वहाँ पहुँचना नामुमकिन है। फ़ौज थकी हुई, सुस्त और वर्वाद है। उसको तरतीब नहीं दी जा सकती। फिर, दुश्मन हालांकि पायमाल हो चुके हैं—फिर भी उनका ख़तरा बना हुआ है।

बादशाह—जो कुछ भी हो—मगर इस मूँजी जगह से फौरन लश्कर कूँच करना चाहिए और रूपनगर हमारे पहुँचने की खबर भिजवा देना चाहिए।

दिलेर ख़ाँ—जो हुक्म ! मगर मुझे कुछ दाल मे काला नज़र आता है।

बादशाह—यानी।

दिलेर ख़ाँ—मेवाड़ की फौज का शाही सवारी को रास्ते मे अटकाना किसी ख़ास मकसद से ही हो सकता है।

बादशाह—तुम क्या कहना चाहते हो ?

दिलेर खाँ—यही, कि रूपनगर के राजा ने दग़ा की है। उसने इधर हमें बुलाया है—उधर राना को हमारी घात में लगा दिया।

बादशाह—(ग़ुस्से से बेचैन होकर) अगर ऐसा हुआ तो मैं रूप-नगर और उदयपुर दोनों ही को खत्म कर दूँगा।

दिलेर खाँ—बहतर, तो अब जहाँपनाह आराम करें।

बादशाह—सुबह ही लश्कर का कूँच होगा।

दिलेर खाँ—जो हुक्म।

(जाता है।)

चौथा दृश्य

(स्थान—उदयपुर। महाराणा और उनके दो-चार ख़ास-ख़ास सरदार राजमहल के एक पार्श्व में खड़े हैं।)

एक सरदार—अन्नदाता को रूपनगर से सकुशल लौट आने की वधाई !

राणा—परन्तु सरदारो, जब तक मैं रावत रत्नसिंह के समाचार न जान लूँ—मेरा उद्वेग शान्त नहीं हो सकता। अभी तक युद्ध के कुछ भी समाचार नहीं मिले। (चौंक कर) वह कौन आ रहा है।

(एक योद्धा लोहू-लुहान आता है)

योद्धा—(राणा के आगे घुटनों के बल गिर कर) अन्नदाता की जय हो—मैं युद्ध क्षेत्र से आ रहा हूँ।

राणा—कहो वीर, युद्धक्षेत्र के समाचार कहो ?

योद्धा—महाराज, वहाँ ऐसा घमासान युद्ध हुआ कि रक्त की नदियाँ बह गईं। जैसे वर्षा ऋतु मे बादल उमड़-उमड़ कर, गर्ज-गर्ज कर चौधारी वर्षा करते हैं उसी भाँति राजपूतों ने शत्रुओं को चारो ओर से काट डाला।

राणा—तो युद्ध मे हमारी जय हुई ?

योद्धा—अन्नदाता—अब इसमे क्या कहना है। श्रीमान् सकुशल-कुमारी को हरण कर लौट आए। पापिष्ठ आलमगीर

को वह मुँह की खानी पड़ी कि जिसे वह चिरकाल तक याद रखेगा।

राणा—क्या विजयी वीर रत्नसिंह पीछे आ रहा है।

योद्धा—हाँ महाराज, विजयी वीर, राजपूत धर्म का पालन कर ऐसी आन-बान से आ रहा है जैसी आनबान से आज तक कोई योद्धा मेवाड़ में न आया होगा।

राणा—तुम क्या कहना चाहते हो ?

योद्धा—घणी खम्मा अन्नदाता। वह वीर आ रहा है, वह वीर शिरोमणि। तलवार का धनी।

राणा—सर्दारो, विजयी वीर का स्वागत किया जाय। किले पर, महल में, नगर में, सर्वत्र रोशनी होनी चाहिए, मैं डंका और धौंसा छत्र और चँवर उसे परंपरा के लिये प्रदान करता हूँ।

योद्धा—डंका और धौंसा बजने दीजिए। महाराज, और सर्वत्र रोशनी होने दीजिए। जिससे सब कोई उसे देखे, उसके उस महान् उत्सर्ग को—उसके बलिदान को।

राणा—ठाकुर ! तुम क्या कह रहे हो ?

योद्धा—(आँखों में आँसू भर के) अन्नदाता—सत्य ही कह रहा हूँ।

राणा—तुम्हारी बातें सन्दिग्ध हैं। रावत रत्नसिंह जीवित है न ?

योद्धा—महाराज, वे जीवन को जय कर चुके।

राणा—(ठण्डी साँस लेकर) तो यो कहो वीरवर रत्नसिंह अब नहीं हैं।

योद्धा—अन्नदाता की जय हो। रावत रत्नसिंह अमर हुए, उन्होंने शत्रु से ऐसा लोहा लिया, कि जिसका नाम। महाराज हम उनके मृत शरीर को ले आए हैं।

राणा—रत्नगर्भा वसुन्धरा का एक लाल अपने उठते हुए जीवन में ही समाप्त हो गया। धर्म और कर्तव्य की वेदी पर बलिदान होने का यह अद्भुत उदाहरण रहा। (आँखों में आँसू भर कर) परन्तु इस वीर को मैं कुछ भी पुरस्कार न दे सका।

राठोर जोधासिंह—महाराज, वीर का पुरस्कार तो उसकी यशस्विनी मृत्यु ही है। जो क्षत्रिय अपने कर्तव्य का पालन करता हुआ जीवन उत्सर्ग करे उसकी होड़ कौन कर सकता है। महाराज, यह शरीर नश्वर है और जीवन नगण्य। कर्तव्य और बलिदान ही उसके मूल्य की वृद्धि करता है। रावत रत्नसिंह का जीवन अमूल्य रहा—हम लोग उस पर डाह करते हैं महाराज!

झाला सुलतानसिंह—किसी कवि ने कहा है—

कृपण जतन धन रो करं, कायर जवि जतन।
सूर जतन उन रो करे, जिनरों खायो अन्न॥

राणा—धन्य है वह शूर। (योद्धा से) कहो, उस वीरवर की वीर गाथा विस्तार से कहो।

योद्धा—महाराज, कहाँ तक उस वीर गाथा को बयान करूँ। किसान जैसे दरांत से खेत काटता है उसी प्रकार चूणावत वीर ने शत्रु सेना को काट डाला। उनका शरीर शत्रुओं की लोथों के ढेर में मिला।

राणा—त्यागमूर्ति चूड़ाजी का घराना मेवाड़ मे त्याग और तप का आदर्श कायम कर चुका है। कहो वीर कितने योद्धा युद्ध भूमि से बचे हैं।

योद्धा—कुछ उंगलियों पर गिनने योग्य। परन्तु चिन्ता नहीं महाराज! शरणागत की रक्षा हो गई और मेवाड़ की लाज रह गई।

राणा—वह देश और जाति धन्य है जहाँ हाडी रानी जैसी बालिकाएँ और रत्नसिंह जैसे वीर बालक जन्म लें। जिनके जीवन उत्सर्ग और आदर्श के नमूने हों। जाओ वीर, तुम आराम करो। मैं इस योद्धा का और उसकी विजयिनी सेना का वह स्वागत करूँगा कि जिसका नाम। सर्दारों आओ वीर पूजा की तैयारी करें।

सर्दार गण—चलिए अन्नदाता! (सब जाते हैं) चारण बिरद गाता है—

यह बिरद रजपूत प्रथम मुख झूंठ न बोले।
यहे बिरद रजपूत पर-त्रिय काछ न खोले।

येह विरद रजपूत आथ बाँटे कर जोरैं।
येह विरद रजपूत एक लाखाँ विच ओरैं।
जम राण पायं पाछा घरे देखि मतो अवधूतरो।
करतार हाथ दीधी करद येह विरद रजपूतरो।

(पर्दा गिरता है)

पाँचवाँ दृश्य

(स्थान—उदयपुर का राजमहल। कुँवर जयसिंह की रानी कमल-कुमारी अपने शयन कक्ष में। समय—रात्रि। कोई नैपथ्य में गा रहा है। रानी ध्यान से सुन रही है।)

झिलमिलाती रात आई।
साँझ की आभा सुनहरी छा रही थी दिव्य नभ में।
भानु तपकर अस्त होने जा रहा था श्रान्त पथ में।
कालिमा की कोर जाग्रत जो हुई क्या बात आई।
झिलमिलाती रात आई।

व्योम व्यापक में उजागर दिव्य तारे भर रहे हैं।
मालिनी के भाल पर क्या हास्य सा ये कर रहे हैं।
ज्योति ने मानो तमिस्रा भेदने की घात पाई।
झिलमिलाती रात आई।

कौन पक्षी चिर विरह का गीत गाता है कहाँ से?
प्राण का क्रन्दन सुनाता कौन आता है कहाँ से?
राग छलकाती हुई विश्रान्ति की यह रात आई।
झिलमिलाती रात आई।

रानी—(आकाश की ओर देखकर) अनन्त आकाश में ये उज्ज्वल नक्षत्र कैसे भले मालूम देते हैं। न जाने ये कितनी

दूर से इस अन्धकार में आलोक बखेर रहे है। और इस आलोक बखेरने की वह. कथा कितनी पुरानी, कितनी प्रभावशाली है। कितने कवियों के कवित्वमय हृदयों ने इसे देखा है। कितनी विरहिणी नारियों की आत्मा का व्याकुल भाव इन्होंने देखा है। यह मूक ज्योतिर्मण्डल जगत् मे एक सौन्दर्य का विस्तार करता है। इनसे रात कितनी सुन्दर बन गई है। परन्तु यही क्या इनका अस्तित्व है! नही। अति दूर अपने ध्रुव पर ये सब महान् है। उसी महानता की प्रतीक्षा इनका यह झिलमिल प्रकाश है।

(कुमार जयसिंह आते हैं।)

जयसिंह—वाह, यह चुपचाप तुम्हारा रात्रि निरीक्षण होरहा है।

कमलकुमारी—हॉ स्वामी, आज अभी से आप अवकाश पा गए?

जयसिह—हॉ प्रिये! इन प्राणो को तो तुमने अपने अटूट नेह के तारों से वॉध रखा है, कहीं भी हो खिचकर यहीं चले आते है। अब राणा जी के लौट आने पर मुझे अवकाश भी मिल गया है। पर तुम क्या सोच रही हो प्रिये!

कमलकुमारी—कुछ नही। कोई गा रहा था कि यह झिल-मिलाती रात विश्राम का सन्देश लाई है, मैं सोच रही थी······ जाने दो—वह कुछ नहीं।

जयसिंह—कहो प्रिये, क्या सोच रही थीं?

कमलकुमारी—सोच रही थी—अन्धकार सदैव ही विश्राम का सन्देश लाता है। साथ ही विभीषिकाएँ भी। सब लोग ही रात के अन्धकार में विश्राम कर रहे है। यही जानकर चोरो को चोरी की घात मिलती है।

जयसिह—इसमें तुम क्या सोच रही हो प्रिये!

कमलकुमारी—यही तो स्वामी! क्या जीवन में कभी कोई विश्राम भी कर पाता है? हाँ जीवन के अन्त की बात तो दूसरी है।

जयसिंह—जीवन के अन्त की कैसे?

कमलकुमारी—कैसे कहूँ। रत्नसिह और सौभाग्यसुन्दरी का ही उदाहरण लो। अब वे कहीं न कहीं चिर विश्राम कर रहे होगे। वे कठिन कर्तव्य तो पूरा कर चुके।

जयसिंह—कह नहीं सकता, पर अभी तो चलो हम विश्राम करें।

कमलकुमारी—बिना ही कर्तव्य पूरा किये? जीवन के सिर पर कर्तव्य का भार लादे बीच मार्ग में विश्राम कैसा?

जयसिंह—तो तुम शायद यह कह रही हो कि जीवन एक भार-वाही मात्र है। बोझा ढोना ही हमारा जीवन है और बोझा ढोते-ढोते मर जाने पर हम कर्तव्य पूर्ण कर पाते हैं—अर्थात् मृत्यु ही हमारे लिए संसार का सबसे बड़ा पुरस्कार है।

कमलकुमारी—आपने कभी सोचा है स्वामी! क्यों लोग मरने

वालो पर डाह करते हैं। जीना क्या भाग्यशाली नहीं है ?

जयसिंह—कैसे कहूँ। मै तो कहता हूँ, मैं जब तक जीवित हूँ तभी तक भाग्यशाली हूँ।

कमलकुमारी—आप ही तो कहते हैं। परन्तु········

जयसिंह—परन्तु क्या ? मेरा कथन क्या इतना नगण्य है रानी !

कमलकुमारी—नहीं स्वामी, यह शायद सम्भव ही नहीं कि पत्नी पति की किसी बात को नगण्य समझे। परन्तु मैं यह कह;रही थी, आखिर जीवन है क्या ? खाना, पीना, सोना, हँसना, इन्द्रियो की ,तृप्ति करना और बाल्यावस्था से बुढ़ापे तक अपने ही शरीरको सब प्रक्रियाओं का केन्द्र समझना ही जीवन है। यदि ऐसा है तो मुझे इसमें घोर सन्देह है कि जीवन ही सौभाग्य है।

जयसिंह—तब तुम्हारी राय में जीवन क्या है ?

कमलकुमारी—मेरी राय ? एक मूर्खा स्त्री की राय क्या ? हाँ लोग कहते हैं कि जीवन स्वप्न है, कुछ कहते हैं जीवन संग्राम है। कोई कहते है जीवन भोगवाद है।

जयसिंह—पर तुम क्या कहती हो रानी !

कमलकुमारी—मैं कहूँ ? जीवन शायद एक साधन है।

जयसिंह—साधन ? काहे का साधन ?

कमलकुमारी—संसार के प्रवाह को बनाये रखने का। सृष्टि की नैसर्गिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने का। सृष्टि के

आदि से अव तक अथवा प्रलय तक एक ही क्रम और एक ही गति से कृमि, कीट, पतंग, पशु-पत्ती, मनुष्य, देव, यक्ष, किन्नर और राक्षसो के जीवन इसी भाँति पानी में बबूले की भाँति उदय हुए और अस्त हुए। इस महाकाल के महा प्राङ्गण में वे जीवन एक क्षण-भंगुर प्रमाणित हुए हैं जिनके नाम इतिहास के पृष्ठो पर अमर हैं। वड़े-बड़े महापुरुष, वीर-विजयी, चक्र-वर्ती इसी कालचक्र पर नृत्य करते गये—विलीन होते गये—काल ने उन्हे जन्म दिया और उनका ग्रास भी किया। इसी महाकाल ने प्राणो के इस व्यवसाय को अपना साधन वनाया हुआ है।

जयसिह—कौन तुम्हारे भीतर इस प्रकार बोलता है प्रिये! कौन हो तुम—देवी कि मानवी? ये मनुष्य की कल्पना और विचार शक्ति से परे की वातें तुम सोचती रहती हो, इस नवीन आयु में, नवीन जीवन मे क्या—तुम्हारी वय की स्त्रियाँ यही सोचा करती हैं?

कमलकुमारी—(अनसुनी करके) पर मैं कहती हूं। जीवन जो कभी भी अपना नहीं है, उसे अपनाना तो मूर्खता है, उसकी कोई परिधि नहीं है, सीमा भी नही है। शरीर के अवसान के साथ उसका कोई सम्बन्ध भी नही है। फिर उसी को केन्द्र मान कर समस्त संसार को उसी मे केन्द्रित करना हास्यास्पद है स्वामी!

जयसिंह—कुछ भी समझ में नहीं आता। सुन्दर यह रात, शीतल मन्द-सुगन्ध समीर—तुम्हारा यह स्निग्ध हृदय और मेरा यह प्यासा मन। मेरी समझ में तो यही जीवन है। चलो प्रिये, विश्राम भवन में चल कर इसे सार्थक करें।

कमलकुमारी—चलो स्वामी, जैसी आपकी आज्ञा।

(दोनों जाते हैं पर्दा बदलता है)

छठा दृश्य

(स्थान—उदयपुर। राणा का सभाभवन। कुछ चुने हुए सर्दार बैठे मन्त्रणा कर रहे हैं।)

राणा—सरदारों, हमें आग में कूदना होगा। हिन्दू धर्म और हिन्दू जाति को इस पतन से उभारने में हमारा सर्वस्व जाय तो जाय। बादशाह के और अन्याय ही बहुत थे—परन्तु यह जज़िया तो सबसे बढ़ गया, कोई ग़ैरतमन्द आदमी इस अपमान जनक कर को देना सहन नहीं कर सकता।

एक सर्दार—अन्नदाता, हिन्दुओं की लाज तो अब आप ही रख सकते हैं। सुना है, बादशाह ने हज़ारों आदमियों को हाथियों से कुचलवा दिया।

राणा—मैंने बादशाह को पत्र लिखा है आप लोग भी सुनकर उस पर अपनी सम्मति दीजिए। क्योंकि आप लोग हमारे राज्य के रक्षक और हमारे हाथ-पैर हैं। (दीवान से) दीवान जी, वह पत्र सब सर्दारों को सुना दिया जाय।

दीवान—जो आज्ञा महाराज, यही वह पत्र है—(पत्र निकाल कर पढ़ता है)—'यद्यपि आपका शुभचिन्तक मैं आप से दूर हूँ तो भी आपकी आधीनता और राजभक्ति के

साथ आपकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करने को उद्यत हूँ ।

पुरोहित गरीबदास—दुहाई महाराज की, 'अत्याचारी बादशाह की प्रत्येक आज्ञा पालन कैसे हो सकती है ?

राणा—सुनिए आप ! यह तो शिष्टाचार है ।

दीवानजी—(पढ़ते हुए) 'मैंने पहिले आपकी जो सेवाऐं की हैं उनको स्मरण करते हुए नीचे लिखी बातों पर आपका ध्यान दिलाता हूँ जिनमें आपकी और प्रजा की भलाई है । मैंने यह सुना है कि मुझ शुभचिन्तक के विरुद्ध कार्रवाही करने की जो तदवीर हो रही है उसमें आपका बहुत रुपया खर्च हो गया है और इस काम मे खजाना खाली हो जाने के कारण उसकी पूर्ति के लिये आपने एक कर जज़िया लगाने की आज्ञा दी है ।

सब दर्बारी—शिव शिव । धिक्कार है इस प्रवृति को ।

राणा—आप लोग शान्ति से सुनिए ।

दीवान—(पढ़ते हुए) 'आप जानते हैं कि आपके पूर्वज स्वर्गीय मुहम्मद जलालुद्दीन अकबर शाह ने ५२ साल तक न्यायपूर्वक शासन कर प्रत्येक जाति को आराम और सुख पहुँचाया। चाहे वे ईसाई—मूसाई, दाऊदी, मुसलमान, ब्राह्मण और नास्तिक हो सब पर उनकी समान कृपा रही। इसी से लोगो ने उन्हे जगद् गुरु की पदवी दी थी ।

एक सर्दार—गुण ही जगत में पूजे जाते हैं।

दीवान—(पढ़ते हुए) 'फिर स्वर्गीय नूरुद्दीन जहांगीर ने भी २२ वर्ष तक प्रजा की रक्षा कर अपने आश्रित राजवर्ग को प्रसन्न रखा—इसी तरह सुप्रसिद्ध आला हज़रत शाहजहां ने भी ३२ वर्ष तक दया और नेकी से राज्य कर यश पाया।

सब सर्दार—ख़ूब लिखा।

दीवान—(पढ़ते हुए) 'आपके पूर्वजों के ये भलाई के काम थे। इन उन्नत और उदार सिद्धान्तों पर चलते हुए वे जिधर पैर उठाते थे उधर विजय और सम्पत्ति उनका साथ देती थी। उन्होंने बहुत से देश और किले जीते। अब आपके समय में बहुत से प्रदेश आपकी आधीनता से निकल गये हैं और अब आपके अत्याचार होने से और भी बहुत से इलाके आपके हाथ से निकल जायँगे। आपकी प्रजा पैरों के नीचे कुचली जा रही है और साम्राज्य में कंगाली बढ़ती जाती है। आबादी घट रही है, आपत्तियाँ बढ़ रही हैं। जब गरीबी बादशाह के घर तक पहुँच गई तो प्रजा की बात ही क्या है। सेना असंतुष्ट है, व्यापारी अरक्षित है। मुसलमान नाराज़ हैं, हिन्दू दुःखी हैं। बहुत से लोग भूखे और निराश्रित रात दिन सिर पीटते और रोते हैं।

सब सर्दार—धन्य धन्य ऐसा ही है महाराज! आलमगीर के

राज्य मे तबाही ही तबाही है, किसी की जानमाल व इज़्ज़त सलामत नहीं है ।

दीवान—(पढ़ते हुए) 'ऐसी कंगाल प्रजा से जो बादशाह भारी कर लेने मे शक्ति लगाता है उसका बड़प्पन कैसे स्थिर रह सकता है । पूर्व से पश्चिम तक यह कहा जा रहा है कि हिन्दुस्तान का बादशाह हिन्दुओ के धार्मिक पुरुषो से द्वेष रखने के कारण ब्राह्मण से लेकर जोगी, वैरागी और संन्यासियों तक से जज़िया लेना चाहता है । वह अपने तैमूर वंश की प्रतिष्ठा का विचार न कर एकान्तवासी और गरीब साधुओं पर जोर दिखाना चाहता है । वे धार्मिक ग्रन्थ जिन पर आपका विश्वास है आपको यही बतलावेगे कि परमात्मा मनुष्य मात्र का ईश्वर है न केवल मुसलमानो का । उसकी दृष्टि मे मूर्तिपूजक और मुसलमान बराबर है । रंग का अन्तर उसकी आज्ञा से ही है । वही सबको पैदा करने वाला है आपकी मस्जिदो मे उसी का नाम लेकर लोग नमाज़ पढ़ते हैं और मन्दिरो में जहाँ मूर्ति के आगे घन्टे बजते है, उसी की प्रार्थना की जाती है । इस-लिये किसी धर्म को उठा देना ईश्वर की इच्छा का विरोध करना है ।

पुरोहित ग़रीबदास—निश्चय ऐसा ही है ।

दीवान—(पढ़ते हुए) 'मतलब यह है कि आपने जो कर हिन्दुओं पर लगाया है वह न्याय और सुनीति के विरुद्ध है। क्योंकि इससे देश दरिद्र हो जायगा। इसके सिवा वह हिन्दुस्तान के कानून के खिलाफ नई बात है। यदि आपको अपने ही धर्म के आग्रह ने इस पर उतारू किया है तो सब से पहले रामसिंह से जो हिन्दुओं का मुखिया है, जजिया वसूल करें। उसके बाद मुझ शुभ चिन्तक से। चीटियों और मक्खियों को पीसना वीर और उदार चित्त आदमी के लिये अनुचित है। आश्चर्य है कि आपको यह सलाह देते हुए, आपके मन्त्रियों ने न्याय और प्रतिष्ठा का कुछ भी विचार नहीं किया।'

सब सर्दार—बहुत उत्तम ! बहुत उत्तम !

राणा—यही वह पत्र है जिसे मैं बादशाह को भेजना चाहता हूँ। अब आप लोग विचार कर बतावें कि हमें क्या करना चाहिए—क्योंकि यह पत्र बादशाह की क्रोधाग्नि में घृत का का मदेगा।

सब सर्दार—महाराज, वह तो एक दिन हमें झेलना ही है, बादशाह मेवाड़ को नष्ट करने के लिए तुला बैठा ही है—फिर कल न सही आज ही सही। हमारी तलवारों ने मोर्चा नहीं खाया है। पत्र भेजा जाय।

राणा—तो सबकी यही राय है ।

सब सर्दार—सब की यही राय है ।

राणा—तब यह पत्र ही रण निमन्त्रण की पूर्णाहुति हो। दीवानजी, पत्र दिल्ली व्यवस्था के साथ भेज दिया जाय साथ मे दो तलवार एक नंगी और दूसरी म्यान सहित ।

दीवान—जो आज्ञा, दर्बार !

(पर्दा गिरता है)

सातवाँ दृश्य

(स्थान—दिल्ली के शाही महल के भीतर का नज़र बाग। उदयपुरी बेगम अकेली टहल रही है। समय—सायंकाल।)

उदयपुरी बेगम—(स्वगत) बेत खाकर जैसे कुत्ता दुम दबा कर भागता है उसी तरह भाग आए। कहते हैं ये है शहन्शाहे आलम, शहनशाही की सारी शान धूल में मिल गई। मैंने कहा था उस बांदी से चिलम भरवाऊँगी मगर कहाँ? बादशाह की नाक को लातों से तोड़ने वाली वह मग़-रूर पाजी गँवारी काफिर लड़की शहनशाहे हिन्द को चरका देकर साफ़ निकल गई। सारी शहनशाही की शान धूल मे मिल गई। (देखकर) वह बादशाह सलामत आ रहे हैं। (हँसकर) बन्दगी जहांपनाह, फर्माइए वह बांदी कहाँ है? मुझे हुक्का भरवाने की बड़ी ही दिक्कत हो रही है।

बादशाह—इतमीनान रखो बेगम, बहुत जल्द वह बाँदी तुम्हारे हुज़ूर में हाज़िर कर दी जायगी। उसके बाद जी चाहे जितनी चिलम भरवाए करना।

उदयपुरी बेगम—वल्लाह, जहांपनाह तो इस तरह फर्मा रहे हैं गोया सब कुछ हुज़ूर की ताकत ही मे है।

बादशाह—मैं आलमगीर हूँ और मेरी ताकत का अन्दाज़ा लगाना औरतो का काम नहीं।

उदयपुरी बेगम—वजा है, एक अदना औरत कैसे शहनशाहे आलम की ताक़त का अन्दाज़ा लगा सकती है। शायद हुज़ूर की ताकत का अन्दाज़ा न लगा सकने ही पर उस काफ़िर गंवारिन लड़की ने हुज़ूर की नाक लातों से तोड़ी थी।

बादशाह—(.ग़ुस्से से) जमीना आसमान पर जहाँ वह होगी लाकर यहाँ हाज़िर की जायगी और शहनशाह के साथ की गई ग़ुस्ताख़ी की सज़ा पावेगी।

उदयपुरी बेगम—सच है, फ़िलहाल तो हुज़ूर शायद मस्लहत से उससे शादी न कर बीच रास्ते ही से लौट आए।

बादशाह—मुझ से दग़ा की गई।

उदयपुरी बेगम—उम्मीद न थी कि वह गंवारिन ऐसी चालाक निकलेगी कि बादशाह आलमगीर को भी चरका दे जायगी।

बादशाह—मगर आलमगीर के .ग़ुस्से को बढ़ाना आग से खेलना है।

उदयपुरी बेगम—(हँसकर) सुना है इन राजपूत लड़कियों को आग से खेलने की ख़ास कुदरत होती है। हां, तो क्या यह सच है कि उस लड़की ने उदयपुर के राणा से शादी कर ली।

बादशाह—सुना तो है।

उदयपुरी वेगम—और उसी साइत में, जिसमें हुजूर उससे शादी करने वाले थे।

वादशाह—उसी साइत में।

उदयपुरी वेगम—जहांपनाह लाचार लौट आए। क्या इसी बूते पर हुजूर हिन्द पर हुकूमत करेंगे। भाइयों को कत्ल करके और वाप को क़ैद करके जो तख्त आपने गुनाहों की दलदल मे फँसकर हासिल किया है उसकी जड़ एक नाचीज गँवारी हिन्दु लड़की यों हिला डालेगी, मैंने यह नहीं सोचा था।

वादशाह—आलमगीर वदला लेगा। तुम देख लेना वह सरकस वदवख़्त उदयपुर का राणा आलमगीर के कदमों पर नाक रगड़ेगा। मैं मेवाड़ को जला कर ख़ाक कर दूंगा—एक भी गाँव, एक भी घर, एक भी इन्सान ज़िन्दा न वचने पावेगा। मैं औरत, वच्चों और बूढ़ो पर भी रहम न करूँगा। तमाम राजपूताने की ईंट से ईंट वजा दूँगा।

उदयपुरी वेगम—शायद आप यह कर सकेंगे। और वह मगरूर वाँदी?

वादशाह—वह जरूर रंग महल में आकर तुम्हारी चिलम भरेगी।

(तेज़ी से जाता है)

आठवाँ दृश्य

(स्थान—उदयपुर का ज़नाना महल। महाराणा राजसिंह और चारुमती। समय—प्रातःकाल।)

राणा—अब तुम्हारी क्या इच्छा है राजकुमारी ! बादशाह से तो तुम्हारी रक्षा हो गई।

चारुमती—(लजाकर) महाराज, जिस क्षत्रिय कन्या को आपने हरण किया है, उसकी इच्छा क्या है ? जिस लिये क्षत्रिय वीर क्षत्रिय कन्या को हरण करते हैं—वही आपने किया।

राणा—हमने अपनी इच्छा से तो तुम्हारा हरण किया नहीं तुम्हारा पत्र पा शरणागत की रक्षा का कर्त्तव्य पालन किया है।

चारुमती—महाराज, हरण की हुई कन्या की अन्यत्र गतिविधि कहाँ है।

राणा—क्यों ? अब तुम रूपनगर जा सकती हो, विक्रमसिंह सच्चे क्षत्रिय हैं वे तुम्हे खुशी से रखेंगे। फिर जहाँ तुम्हारी इच्छा होगी या उन्हे उचित प्रतीत होगा तुम्हारा व्याह कर देंगे।

चारुमती—(आँसू भरके) महाराज, विपत्ति ने मेरी लाज-शर्म तो धो बहाई। आपका धर्म जैसे आप समझते हैं उसी

तरह अपना धर्म मैं भी समझती हूँ। मैंने जब अपने को आपके अर्पण कर दिया और बड़ों ने आपकी गाँठ बाँध दी तो यह तन-मन आपका हुआ और अब क्या कहूँ।

राणा—परन्तु कुमारी, वह सब बातें तो विवश होकर की गई थी। बादशाह से बचने की दूसरी राह नही थी। मेरा क्षत्रिय धर्म और राजधर्म दोनों ही यह कहते हैं कि शरणागत से अनुचित लाभ न उठाया जाय।

चारुमती—तो महाराज क्या कहना चाहते है ?

राणा—यही कि अब तुम रूपनगर जाओ और जैसा तुम्हारे गुरुजनों का आदेश हो वह करो।

चारुमती—जैसी आपकी आज्ञा। आप मुझे रूपनगर भेजेंगे तो मे वहीं चली जाऊँगी। परन्तु वहाँ जाने पर दिल्ली के दैत्य से मैं बच न सकूंगी। रूपनगर की शक्ति मेरी रक्षा न कर सकेगी, मुझे फिर महाराज की शरण लेनी पड़ेगी, परन्तु अब मैं आपको व्यर्थ कष्ट न दूंगी, दिल्ली चली जाऊँगी।

राणा—दिल्ली क्या रंगमहल में जाओगी। ऐसा ही विचार था, तो पहिले ही क्यों नहीं गई थीं।

चारुमती—पहिले सोचा था कि" " ख़ैर जाने दीजिए।

राणा—कुमारी, यदि बादशाह की बेगम बनने का तुम्हारा इरादा हो गया है, तो मैं उसमे विघ्न न करूंगा।

चारुमती—राजपूत वाला के इरादे में विघ्न करने वाला वीर पृथ्वी पर कौन है। मैंने आपसे कहा था न कि मुझे और एक शक्तिशाली आसरा मिल गया है। इस वार मैं आप से अधिक शक्तिशाली की शरण जाऊँगी।

राणा—वह शक्तिशाली कौन है ?

चारुमती—यह विप। अन्त में राजपूत की वेटियों की यही तो गति होती है।

राणा—क्या अव विषपान करोगी कुमारी ?

चारुमती—और उपाय क्या है ? आशा है विष शरणागत को आपकी भाँति पीछे निराश्रय न करेगा।

राणा—मैं निराश्रय तो नहीं करता कुमारी ?

चारुमती—तव फिर रूपनगर में मेरा रक्षक कौन है ?

राणा—तो फिर तुम यहीं रहो।

चारुमती—मिहमान वनकर या दासी वनकर।

राणा—(हँस कर) कुमारी, तुमसे जीतना कठिन है। मैं तुम्हारी वाचालता देखता था। अच्छा तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो—जो चाहती हो वही वनकर।

चारुमती—(राणा के चरण छूकर) महाराज, आज ही से नहीं, जिस दिन मैंने आपकी तस्वीर देखी उसी दिन से आपकी चरण-दासी वन गई थी। आप सोचते होंगे, मेरे लिए वादशाह से रार ठनेगी। सो तो जो होना था हो चुका। महाराज का तेज प्रताप वहुत वड़ा है। उस से टकरा कर मुग़लों का दर्प चूर्ण होगा।

राणा—मुगलों का मुझे कुछ भी भय नहीं है कुमारी ! तुम जैसी चतुर, रूप गुणवती जिस राजा की भार्या हो—वह धन्य है। आओ, आज मैं मन वचन से तुम्हें अपनी राजमहिषी बनाता हूँ।

चारुमती—(आँसू भरकर) महाराज ! मैंने प्रतिज्ञा की थी कि आप यदि मुझे ग्रहण न करेंगे तो मैं राजसमुद्र में डूब मरूँगी।

राणा—प्रिये ! अब सच्ची मेरे मन की बातें सुनो। तुमने केवल विपत्ति मे फँस कर मेरी महिषी बनना चाहा था इसी से हमने इतनी बातें कही। पर एक बात विचार कर हम यह उचित समझते हैं कि रूपनगर खबर भेजकर तुम्हारे गुरुजनों को बुलाकर उनके हाथ से तुम्हारा ग्रहण विधिवत् करें—यही हमारी इच्छा है। इसमें औचित्य भी है और धर्म भी।

चारुमती—आपका प्रस्ताव ठीक है। मैं भी उनका आशीर्वाद लेकर ही आपकी चरणदासी बना चाहती हूँ।

(पर्दा गिरता है।)

नवाँ दृश्य

(स्थान—उदयपुर का राजभवन। दुर्गादास और राणा राजसिंह परस्पर बातचीत कर रहे हैं। समय—सायंकाल।)

दुर्गादास—महाराज ! अब हमें कुछ न कुछ कर डालना चाहिए। यदि हम युक्ति से काम न लेंगे। तो निकट भविष्य में जो हम पर भावी विपत्ति आ रही है उससे हमारी रक्षा होना किसी भी भाँति सम्भव नहीं है।

राणा—दुर्गादास, आपकी बातें विचार के योग्य हैं और आपकी युक्ति भी महत्त्वपूर्ण है। मैं स्वीकार करता हूँ कि हम अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर भी मुग़ल साम्राज्य को नहीं उलट सकते।

दुर्गादास—इसी से महाराज, मैंने यह जाल रचा है। साम, दाम, दण्ड, भेद यह तो राजनीति है। पहिले हमने शाहज़ादे मुअज्ज़म से यह प्रस्ताव किया था कि वह बादशाह के विरुद्ध बग़ावत का झण्डा खड़ा करे और हिन्दु शक्तियो का सन्मान करे, तो राजपूतों की सम्मिलित शक्ति की सहायता से बादशाह बना दिया जायगा।

राणा—फिर, क्या शाहज़ादा इस पर राजी हुआ ?

दुर्गादास—पहिले वह राज़ी होगया था। राव केसरीसिह चौहान और सौनिक ने उससे बातचीत की थी, परन्तु अजमेर

से शाहज़ादा मुअज़्ज़म की माता बेगम नब्वाव बाई ने उसे मना कर दिया और उसने इन्कार कर दिया।

राणा—इसके बाद ?

दुर्गादास—हमने शाहज़ादा अकबर से बातें की हैं और उसे समझा दिया है कि औरंगज़ेब हिन्दु विरोधी आन्दोलन खड़ा करके मुग़ल साम्राज्य की क़ब्र खोद रहा है। तुम अगर बादशाह बनकर न्याय से शासन करो तो हम तुम्हारे साथ हैं। इस पर उसने विचार करने का समय मॉगा है। महाराज ! कुल्हाड़ी से काट कराने के लिए लकड़ी का बैंट चाहिये। हम हिन्दुओं का नाश भी मुग़ल शक्ति ने हिन्दुओ ही की सहायता से किया है। इससे हमें भी मुग़लों की शक्ति पर अपना प्रभुत्व क़ायम करने के लिये अकबर को अपना लेना चाहिये।

राणा—करो दुर्गादास ! अगर आप इस काम में सफलता प्राप्त कर सकें तो मैं विरोध नही करूँगा। परन्तु मुझे तो एक ही बात का पछतावा है।

दुर्गादास—वह क्या महाराज !

राणा—यही, कि हमने दारा का पक्ष न लेकर भारी भूल की। यदि महाराजा जसवन्तसिंह और मैं अजमेर की लड़ाई में दारा को सहायता देते तो भारत का भाग्य इस सनकी मुल्ला के हाथ में न जाता। पर अब जो

होना था वह हुआ। हमे झटपट अपनी शक्तियों का संचय कर डालना चाहिए। क्योंकि आँधी और तूफान की भाँति बादशाह की सेना मेवाड़ को ध्वंस करने को आने में अब विलम्ब नही है। हमारी शक्तियाँ सीमित हैं और हमें बहुत ही कम समय है।

दुर्गादास—अन्नदाता का अभिप्राय पाऊँ तो मैं स्वयं अकबर से इस सम्बन्ध में बातचीत का सिलसिला शुरू करूँ।

राणा—अवश्य कीजिये। परन्तु केवल इसी पर निर्भर न रहिये। दृढ़ हाथों से राठौर सैन्य का संगठन कर डालिये। हमारी असली युक्ति और राजनीति तो हमारी तलवार है। समझे!

दुर्गादास—समझ गया महाराज! ऐसा ही होगा।

(जाता है।)

दसवाँ दृश्य

(स्थान—दिल्ली का दीवाने ख़ास । बादशाह औरंगज़ेब और वज़ीर असदुल्ला एकान्त में बातें कर रहे हैं । समय—रात्रि)

बादशाह—तो उस नाचीज़ ने बादशाह आलमगीर को नसीहत करने की जुर्रत की है और तलवार भेजकर चुनौती भी दी है ।

वज़ीर—हुज़ूर ख़त मे तो ऐसा ही लिखा है ।

बादशाह—और आप कहते हैं कि जो लड़का जसवन्तसिंह का बेटा कहकर हमारे सुपुर्द किया गया था, वह जाली था, जसवन्तसिंह का असल बेटा राना के पास है ।

वज़ीर—जी हाँ हुज़ूर ऐसा ही है ।

बादशाह—मगर यह बात यकीन कैसे की जा सकती है ।

वज़ीर—पहिले मुझे भी यकीन न हुआ था । मगर जब सुना कि राना ने उसकी परवरिश के लिए भारी जागीर दी है तो यकीन करना पड़ा ।

बादशाह—और आप कहते हैं कि राना को बार-बार लिखने पर भी उसने उस लड़के को वापिस देने मे टाल-टूल की है ।

वज़ीर—जी हाँ हुज़ूर ।

बादशाह—अकेला रूपनगर का मामला ही उस पर फौजकशी करने के लिये काफी था । इसके पेश्तर भी उसके

खिलाफ बहुत सी बातें सुनी गई हैं। अब अगर राजपूतों की इस दबंगता को न कुचला गया तो शाही तख्त का अमनो-आमान खतरे में पड़ जायगा। मारवाड़ और मेवाड़ की ताकतें मिलकर एक भारी फिसाद बर्पा करेंगी उधर दक्षिण में मराठी चूहा उछल-कूद मचा रहा है। इसलिये अब वक्त आगया है, कि फौज-कशी की जाय। बस, मैं चाहता हूँ कि जल्द से जल्द फौज की तैयारी कर ली जाय।

वजीर—हुजूर, यह बहुत ही पेचीदा मामला है। वक्त बहुत नाजुक है चारों तरफ दुश्मनो का जोर है, ऐसी हालत मे जहांपनाह का दारुल सल्तनत का छोड़ना खतरे से खाली नहीं।

बादशाह—आलमगीर हमेशा खतरे से खेल करने का आदी है। आप अभी अकबर को फरमान भेज दीजिये कि वह अपनी तमाम फ़ौज लेकर अजमेर की ओर कूच करे और जल्द से जल्द हमारे वहाँ पहुँचने की उम्मीद रखे और आप आज से तीसरे दिन हमारे कूंच की तैयारी कर दें।

वजीर—जो हुक्म। (जाता है)

पाँचवाँ अङ्क

पहिला दृश्य

(स्थान—उदयपुर। महाराणा की राजसभा। युद्ध की मन्त्रणा हो रही है, समस्त सरदार हाज़िर हैं। बीच में महाराणा राजसिंह विराजमान हैं।)

राणा—आप सर्दार गण आज एक बड़ी महत्वपूर्ण समस्या पर विचार करने एकत्र हुए है। उसी समस्या पर मेवाड़ के जीवन, मरण और प्रतिष्ठा का प्रश्न अवलम्बित है।

कुँवर जयसिंह—मेवाड़ अपनी प्रतिष्ठा की प्राण देकर रक्षा करेगा।

कुँवर भीमसिह—और उसके प्राण महँगे दामों विकेगे।

राणा—(मुस्कुराकर) शान्त होओ कुँवर! अभी सब बातें सुन लो। आप लोग जानते हैं कि मुग़ल शक्ति ने राजपूताने की वीरता को लोहा लगा दिया है। सभी राजपूत घराने अपनी आन भूल कर केवल शाही नौकरी वजाना ही नहीं प्रत्युत शाही हरम में अपनी पुत्रियों को वेगम वनाना भी अपने लिये शोभा की वात समझे वैठे है।

रावल जसराज—पर यह उनके लिये डूब मरने की वात है।

राणा—अकेला मेवाड़ ही ऐसा बचा है जिसने न तो बादशाह को बेटी दी और न स्वाधीनता ।

राणावत भावसिंह—जब तक मेवाड़ में एक भी सीसोदिया है वह ऐसा कभी न करेगा ।

राणा—यह बात मुग़ल बादशाहों को हमेशा खटकती रही है और समय-समय पर उन्होने मेवाड़ को दलित करने में अपनी पूरी शक्तियों को आज़माया है । मेवाड़ की चौआ-चौआ ज़मीन वीरो के रक्त से रंगी पड़ी है और मेवाड़ को कभी सुख की नींद सोना नसीब नहीं हुआ । मेवाड़ की न जाने कितनी कुलाङ्गनाएँ अपने उठते अरमान हृदय मे लिये जलकर राख हो चुकी हैं । (आँसू भर आते हैं)

महाराज मनोहरसिंह—(आवेश में) आज भी मेवाड़ मे उत्सर्ग और वीरता के भाव जीवित हैं और आवश्यकता पड़ने पर मेवाड़ वैसा ही जौहर दिखावेगा जैसा उसके पूर्वजो ने दिखाया है ।

राणा—मेवाड़ पर शाही नाराजी के ये पुराने कारण तो हैं ही, अब और नये कारण भी पैदा हुए हैं ।

महाराज दलसिंह—नये कारण कौन-कौन हैं, हम सुना चाहते हैं ।

राणा—(मुस्कुराकर) सुनिए, इसीलिये आप लोगों को इकट्ठा किया गया है । हमने शाही आज्ञा की बिना परवा

किये अपने वे खोये हुए परगने दखल कर लिये जिन्हे बादशाह शाहजहाँ ने जब्त कर लिया था।

महाराज अरिसिंह—वे परगने हमारे थे। बादशाह ने अन्याय से उन्हे जब्त किया था।

राणा—प्रसिद्ध है कि आलमगीर देवमन्दिर ढहाने में अपने सब पूर्ववर्ती बादशाहो से बाजी ले गया है। वह बादशाह पीछे है पहिले कट्टर धर्मान्ध मुल्ला है। जब वह गुजरात का सूबेदार था तब उसने अहमदाबाद का चिन्तामणि का मन्दिर गिरवा कर उसके स्थान पर मस्जिद बनवाई थी, और भी गुजरात के कई मन्दिर ढहवा दिये थे। अभी कुछ दिन प्रथम उसने राज्यभर के सब पुराने मन्दिरो को तोड़ डालने और पाठशालाओं को बन्द कर देने का हुक्म दिया है और धर्म सम्बन्धी पठन पाठन रोक दिया है। काठियावाड़ के सोमनाथ, काशी के विश्वनाथ, मथुरा के केशवराय के प्रसिद्ध मन्दिरों को विध्वंस करके वहाँ मस्जिद बनवादी है। उसने राज्य भर के मन्दिरों और धर्म स्थानों को नष्ट करने को एक महकमा कायम किया है और अब तक हज़ारो मन्दिर विध्वंस कर चुका है। जब उसने गोवर्धन के वल्लभ सम्प्रदाय के द्वारिकाधीश के मन्दिर पर शनिदृष्टि की तो गोस्वामियों ने मेवाड़ की शरण ली और कांकरोली मे उसकी स्थापना की

गई। इसी भाँति गोवर्धन स्थित श्रीनाथ की मूर्ति को जब लेकर गोस्वामी बूंदी, कोटा, पुष्कर, किशनगढ़, जोधपुर गये पर किसी ने आश्रय नहीं दिया। अन्त में गोसाईं को मैंने वचन दिया कि मूर्ति को मेवाड़ में ले आओ। मेरे १ लाख सीसोदियो का सिर काटने पर ही औरंगज़ेब उसे विध्वंस कर सकता है। और वह सीहॉड़ मे स्थापित कर दी गई है।

झाला चन्द्रसेन—जय हिन्दुपति हिन्दुसूर्य महाराणा की। महाराज का यह कार्य मेवाड़ की प्रतिष्ठा के योग्य ही हुआ है।

राणा—फिर हमने धर्म संकट में पड़ कर बादशाह की मंगेतर रूपनगर की राजकुमारी चारुमती का हरण करके उसे नाराज़ कर दिया, क्योंकि राजपूत बाला ने शरण चाही थी।

रावत केसरीसिंह—यह तो क्षत्रियोचित कार्य ही हुआ है।

राणा—परन्तु सब से अधिक नाराज़ी तो बादशाह के मन में मेरे उस ख़त से हुई है जो मैंने ज़ज़िया के विरुद्ध उसे लिखा है और उसे चुनोती दी है कि पहिले वह मुझ से वह कर ले। यह अपमान जनक कर बादशाह अकबर ने बन्द कर दिया था। १०० वर्ष पीछे अब औरंगजेब ने इसे जारी कर सख्ती के साथ वसूल किया है, जो न्याय और नीति के विरुद्ध है। राज-

पूताने में कौन था जो हिन्दुओं के इस अपमान से उन्हें बचाने की आवाज़ उठाता। लाचार मुझे ही मुँह खोलना पड़ा।

रावत रत्नसेन—घणीखम्मा अन्नदाता, यह काम आप ही के योग्य था।

राणा—सर्दारों, बादशाह को नाराज़ करने के लिये यही कारण काफ़ी थे-पर मैं एक और भारी अपराध कर बैठा। मारवाड़ पति वीर महाराज जसवन्तसिंह को जमरुद के थाने मे बादशाह ने मरवा डाला। जब उनकी विधवा रानी और कुँवर जोधपुर लौट रहे थे, बादशाह ने जोधपुर को खालसा कर लिया और रानी तथा कुँवर को दिल्ली आने का हुक्म दिया। बादशाह की नियत खराब देख रानी कुँवर को लेकर वहाँ से भाग निकली और मेवाड़ की शरण ली। दुर्गादास राठौर ने मुझे सब हकीकत कही। मुझे मारवाड़ के भावी राजा को आश्रय देना पड़ा। फिर बादशाह के बारम्बार लिखने पर भी मैंने उन्हें न दिया।

राव केसरीसिंह—हम मर मिटेंगे पर शरणागत की रक्षा करेंगे।

राणा—सर्दारो, हमारे इन्हीं सब अपराधों का दण्ड देने और हमसे जज़िया वसूल करने प्रतापी आलमगीर भारी सेना लेकर हम पर चढ़ आया है और अजमेर में छावनी डाली है। तथा एक बड़ी सेना के साथ

दूसरा दृश्य

(स्थान—उदयपुर; शाहज़ादा अकबर की छावनी। शाहज़ादा अकबर और उसके सरदार लोग। समय—सायंकाल।)

अकबर—बड़े ही ताज्जुब की बात है कि रास्ता, बाग़, वन, बग़ीचा, सरोवर सब जगह सन्नाटा है। शहर जैसे जादू के ज़ोर से सो गया है। कहिये हसनअली साहेब, क्या आपको शहर में कोई आदमी मिला ?

हसनअली—एक चिड़ी का पूत भी नहीं। मैंने ख़ुद घूमकर सब तरफ देख लिया।

अकबर—आपका क्या ख़याल है ? मुल्क के सब वाशिन्दे क्या हुए ?

हसनअली—ज़ाहिरा ऐसा मालूम होता है, हमारी फ़ौज को देखकर सब डर कर जंगलों में भाग गये हैं।

अकबर—तब उन पहाड़ी चूहों से जंग किस तरह किया जायगा !

हसनअली—जंग की जरूरत ही क्या है। तमाम मुल्क, शहर, गॉव, हलके, किले हमारे हाथ में आ ही गये। मुल्क फतह हो गया। बस बैठे चैन की वंशी बजाइये।

अकबर—यह भी ठीक है। मगर सोचना यह है कि क्या मुल्क फतह हो गया !

हसनअली—इसमें भी शक है। शाहज़ादा साहेब खुद उदयपुर में मुकीम हैं, तमाम मुल्क मे हमारी फौज फैल गई है। मेरा तो ख़याल ऐसा है कि हम चारों तरफ थाने बैठाते हुए तमाम मुल्क और किलो को शाही दखल में करते जायँ।

अकबर—यही किया जाय। अब आप १० हजार फौज लेकर उसकी अलग-अलग २ टुकड़ियाँ वनाकर हर ओर से दुश्मन को घेर लें और मुल्क के भीतरी हिस्सों में घुसते जायँ।

हसनअली—दुश्मन को घेरना तो नामुमकिन है। हाँ, सूने गाँव, उजाड़ खेत, सूखे हुए कुओं और बर्बाद रास्तों को घेर लिया जायगा। मगर एक मुसीबत है।

अकवर—वह क्या ?

हसनअली—अगर बाहर से रसद न मिली तो सिपाही और घोड़े भूखे-प्यासे मर जावेंगे। सब से बड़ी बात चारे और पानी की है। मुल्क भर में न एक बूँद पानी है न एक तिनका चारा।

अकबर—पानी के लिए नये कुएँ खुदवा दिये जायँ।

हसनअली—यह बहुत ही मुश्किल है। इन पहाड़ी जगहो में पहले तो बड़ी गहराई तक पानी मिलना ही मुश्किल है फिर कहीं-कहीं तो कुएँ खुद भी नहीं सकते। दूर-दूर कोई नदी नाला भी नहीं है। फिर चारे के लिए कोई

चारा नहीं है। सिपाहियों का राशन अगर रोक दिया गया, तो बेमौत मरे।

अकबर—तब आप किस ख़याल से फर्मा रहे थे कि मुल्क फ़तह हो चुका, जंग की जरूरत नहीं।

हसनअली—मैं यही कह रहा था, कि कोई नज़र आवे तो लड़ाई की जाय। अब लड़ें तो किस से ?

अकबर—बड़ा ही पेचीला मामला—दरपेश है। मैं ग़ौर करूँगा, अभी आप अपनी टुकड़ियों को इधर-उधर पानी और चारे की तलाश में भेजें। जो चीज़ जहाँ मिले ज़ब्त कर ली जाय। मन्दिर ढहा दिये जायँ, गाँव फूंक दिये जायँ, जानवर और आदमी जो मिले क़त्ल कर दिये जायँ। एक बार इस खौफनाक मुल्क को पूरी तौर पर पामाल कर देना पड़ेगा।

हसनअली—बहुत खूब। (जाता है)

(पर्दा बदलता है)

तीसरा दृश्य

(स्थान—अजमेर। आनासागर की पाल, बादशाह औरङ्गजेब की छावनी। शाही खेमें में बादशाह और उसके अमीर परामर्श कर रहे हैं। समय—प्रातःकाल।)

बादशाह—अकबर ने क्या पैगाम भेजा है ?

तहव्वुर खाँ—जहाँपनाह, मेवाड़ को फतह करने में बड़ी-बड़ी मुश्किलें दरपेश हैं।

बादशाह—वे कौन सी मुश्किलें हैं जिन्हें शाही फौज को पूरा करने मे दिक्कतें आती हैं।

तहव्वुर खाँ—ख़ुदावन्द, पहिली बात तो यह कि मेवाड़ के शाही थाने एक दूसरे से बहुत दूर हैं। और उनके बीच-बीच मे अरावली की पहाड़ियाँ आ गईं हैं जिनके ऊपरी हिस्सो पर राणा का कब्जा है। वह वहाँ से मौका पाते ही चीते की तरह पूरब या पच्छिम से हमारी फौज पर आ टूटता है और फौज को काट कूट और छावनी को लूट लाट फिर पहाड़ पर जा छिपता है।

बादशाह—(भौं सिकोड़ कर) और ?

तहव्वुर खाँ—फिर मेवाड़ का पहाड़ी इलाका—उदयपुर से पश्चिम में कुम्भलगढ़ तक और राज समुद्र से दक्षिण में सलूंबर तक एक तरह से निहायत मजबूत क़िले

के जैसा है। जिस में घुसने के लिये सिर्फ ३ नाले हैं। उदयपुर, राज समुद्र और देसूरी।

बादशाह—(बेचैनी से) शाही फौज की कैफ़ियत क्या है?

तहव्वुर ख़ॉं—उसके सामने दिक्कत यह है कि चित्तौर से मारवाड़ जाने के लिये उसे बदनौर-सोजत और व्यावर होकर लम्बा और ऊबड़-खाबड़ उजाड़ रास्ता तै करना पड़ता है—जिसमें न कहीं पानी है और न चारा। तिस पर एक और आफत है।

बादशाह—वह क्या?

तहव्वुर ख़ॉं—इस रास्ते के तमाम नाको और घाटो पर ५० हज़ार भील तीर कमान लिये तैनात हैं। जो छिपकली;की तरह पहाड़ पर चढ़ और उतर सकते हैं और जिनका निशाना अचूक होता है।

बादशाह—शाही फ़ौज को और क्या दिक्कतें हैं?

तहव्वुर ख़ॉं—जहॉंपनाह, इस मुसीवत के अलावा—उसे रसद की बड़ी ही दिक्कत है। ज्यो ही मुल्क के भीतरी हिस्सो में फॅसी शाही फौज को रसद भेजी जाती है—वह आनन-फानन लूट ली जाती है। मुल्क के भीतरी हिस्से की तमाम फसल वर्वाद कर दी गई है। गॉव और बस्तियॉं उजाड़ दिये गये हैं। कुएॅ और तालाब पाट दिये गये हैं। मुल्क भर में न घोड़ों को चारा पानी मिलता है न सिपाहियो को खाना।

बादशाह—बहुत .खूब। अब हमारी तजवीज यह है कि तमाम पहाड़ी इलाके को घेर कर देसूरी, उदयपुर और राजसमुद्र के घाटों से भीतर घुसा जाय।

तहव्वुर ख़ाँ—जो इर्शाद।

बादशाह—शाहज़ादा मुहम्मद अकबर को उदयपुर के मुहाने पर तैनात होने का फर्मान भेज दिया जाय और उसकी मदद को हसन अलीख़ाँ, शुजात ख़ाँ, रजीउद्दीनख़ाँ रहें। उनके साथ ५० हजार फ़ौज और फरंगियों का तोपखाना भी जाय।

तहव्वुर ख़ाँ—बहुत अच्छा जहाँपनाह!

बादशाह—और तुम देवारी के घाट का दख़ल कर लो। साथ ही मांडल वग़ैरा परगनों को भी शाही दख़ल में लेकर थाने बैठा दो।

तहव्वुर ख़ाँ—जहाँपनाह की जैसी मर्ज़ी।

बादशाह—हम .खुद जल्द राजसमुद्र के मोर्चों पर जाँयगे। सादुल्ला ख़ाँ को लिख दो कि अपनी फौज के साथ वहाँ हमारा इन्तज़ारी करे।

तहव्वुर ख़ाँ—बहुत खूब, मगर जब दुश्मन सामने आता ही नहीं तो लड़ाई कैसे होगी?

बादशाह—मुल्क को चारों तरफ से घेर कर मुल्क के भीतरी हिस्सों में घुसते ही चले जाओ और तमाम मेवाड़ को ख़ालसा करके शाही थाने बैठाते चले जाओ।

जहाँ दुश्मन नज़र आये काट डालो। आख़िर वह कहाँ पनाह लेगा। तमाम मेवाड़ को कुचल कर बर्बाद कर दो, कि फिर यह सिर न उठा सके।

तहव्वुर ख़ाँ—जो हुक्म जहाँपनाह !

बादशाह—सुनो, तमाम सिपहसालारों को हुक्म भेज दो कि जहाँ जो मन्दिर शिवाला नज़र आवे ज़मीदोज़ कर दिया जाय। गाँव जलाकर ख़ाक कर डाले जाँय और औरत मर्द जो मिले क़त्ल कर डाला जाय।

तहव्वुर ख़ाँ—जो हुक्म। (जाता है)

बादशाह—(स्वगत हाथ मलता हुआ) इस बार मैं इन मग़रूर राजपूतों से निपट लेना चाहता हूँ। चित्तौर जब तक राजपूताने की छाती पर सिर उठाए खड़ा है, मुग़लों का जलाल फीका है। जन्नतनशीन अकबर शाह से लेकर अब तक की तमाम कोशिशें इसे क़ब्ज़ा करने की बेकार गईं। इस बार मैं मेवाड़ को ख़तम कर दूँगा। आलमगीरी कहर से वह बच न पाएगा।

चौथा दृश्य

(स्थान—उदयपुर। शाहजादा अकबर की छावनी। समय—रात्रि)

अकबर—आप यह कहते क्या हैं जनाब !

तहव्वुरखां—जो कहता हूँ बिल्कुल सच है। आज नौ रोज से हसनअलीखां और उनकी फौज का पता नहीं।

अकबर—फौज को क्या सांप सूंघ गया या ज़मीन निगल गई।

तहव्वुरखां—खुदा जाने, तिस पर खुदा की मार, मालवे से मन्दसौर और नीमच के रास्ते १० हज़ार बैलों पर बंजारे रसद ला रहे थे। वे सब रास्ते में भीलों ने लूट लिये।

अकबर—लूट लिये ? इसके माने यह कि हमें कल से भूखों मरना होगा।

तहव्वुरखां—यकीनन, क्योंकि अब रसद क़तई नहीं है। न कुओं और तालाबों मे पानी है।

अकबर—(हाथ मलकर) तो हम चूहेदानी मे बन्द चूहो की तरह मरेंगे ? आप अभी नाके नाके पर थाने बैठाइए और हसनअली की फौज को तलाश कीजिए।

तहव्वुरखां—कोई शाही अफसर थानेदारी कुबूल नहीं करता, क्योंकि दुश्मन बाज़ की तरह टूट कर थानों को लूट कर और मार काट करके न जाने कहाँ भाग जाते हैं।

अकबर—आप खुद घाटों और दर्रों में फौजों की टुकड़ियां भेजिए।

तहव्वुरखां—बेकार। फौज घाटियों और दर्रों मे जाने से इन्कार करती है। उसकी हिम्मत बिल्कुल टूट गई है। एक मुसीबत और है।

अकबर—वह क्या ?

तहव्वुरखां—चित्तौड़ के आस पास के सब थाने टूट चुके हैं। और राजपूतों ने पहाड़ो से निकाल कर बदनौर तक अपनी फौजें फैला दी हैं इससे अजमेर से हमारा ताल्लुक टूटने का पूरा अन्देशा है। फौज बे सरो-सामान, थकी हुई बे सिलसिले भूखी और प्यासी है।

(एक सिपाही घबराया आता है)

सिपाही—ख़ुदावन्द, दुश्मनों की फौज ने छावनी पर हमला किया है।

अकबर—(खड़ा होकर) तहव्वुरखां ! आप फौरन फौज की मोर्चे बन्दी करें। मैं अभी आता हूँ।

तहव्वुरखां—बहुत खूब। (जाता है)

(पर्दा बदलता है)

पाँचवाँ दृश्य

(स्थान—देवरी की घाटी। एक पहाड़ की तलहटी में शाही छावनी पड़ी है। फ़ौजदार—नायब इक्कताज ख़ाँ और उनके दो मुसाहिब पीरबख्श और मियाँ कमरुद्दीन अगल-बगल बैठे हैं। नायब साहेब मसनद पर बैठे पेचवान पी रहे हैं। एक ख़िदमतगार जड़ाऊ तलवार लिये पीछे खड़ा है। एक ख़िदमतगार घोड़ा लिए सामने खड़ा है। नायब साहेब पेचवान पर अम्बरी तम्बाकू पी रहे हैं। दो-चार सिपाही इधर-उधर खड़े हैं। फ़ासिले पर लड़ाई का शोर-गुल हो रहा है।)

नायब—कहो मियाँ पीरबख्श इस वक्त अगर दुश्मन यहाँ आजाय तो तुम क्या करो?

पीरबख्श—जनाब मजाल है?

नायब—ताहम।

पीरबख्श—तो मैं उन्हे कच्चा ही चबा जाऊँ।

नायब—बहुत खूब, और तुम मियाँ कमरुद्दीन।

कमरुद्दीन—क्या मैं? मैं उन्हे इतनी गालियाँ दूँ, इतनी गालियाँ दूँ कि बच्चू जी को छटी का दूध ही याद आजाय।

नायब—यह भी ठीक है। तुम्हारे जैसे बहादुर मुसाहिबों के पास रहते फिर ग़म किस बात का। मगर ख़ैर, एहतियातन हमारी तलवार म्यान से बाहर निकाल कर हमारे पास रख दो और बन्दूक तमंचा भर कर लैस कर लो।

खिदमतगार—(तलवार नंगी करके पास रखकर) जो हुक्म बन्दा नवाज़। (बन्दूक़ में गज़ डालता है) उसमें से मिट्टी निकलती है।

नायब—वाह, बन्दूक में से मिट्टी कैसे निकली ?

खिदमतगार—हुजूर, उसमे दीमक ने घर कर लिया है।

पीरबख़्श—दीमक का भी क्या कलेजा है।

कमरुद्दीन—और अगर गोली लग जाय तो ?

नायब—मियाँ पीरबख़्श, तुम बंदूक का निशाना लगा सकते हो ?

पीरबख़्श—हुजूर, अपने मुँह से क्या कहूँ। एक वार कुत्ते से हमारी लाग डाट हो गई। ख़ुदा की क़सम, हमसे कोई ११। १२ क़दम पर था। धरके जो बंदूक दागता हूँ तो पों-पों करके भागता ही नजर आया।

नायब—(हँस कर) क्या कहने है। बड़े ही बहादुर हो।

पीरबख़्श—हुजूर, इतनी इज्जत न करें, गुलाम जरा इस वक्त रंज में है—सोचता हूँ हुसेनी की मा—

नायब—ओह—वह मजे में पुलाव पका रही होगी। हां जरा निशाना तो लगाओ (खिदमतगार से) देना ज़रा बन्दूक इन्हे। (खिदमतग़ार बन्दूक देता है उसे उलट पुलट कर देखने के बाद धीरे से नीचे रख देता है)

नायब—उड़ती चिड़िया पर निशाना लगा सकते हो ?

पीरबख़्श—हुक्म हो तो आस्मान को भून कर रख दूँ ?

नायब—चिड़िया पर निशाना लगाओ।

पीरबख़्श—(रोनी सूरत बना कर और ज़मीन में ठोकर मार कर ग़ज़ल गाता है)।

क्या हाल हो गया है दिले बेक़रार का।
आज़ार हो किसी को इलाही न प्यार का।
मशहूर है जो रोज़े क़यामत जहान में।
पहला पहर है मेरी शबे इन्तज़ार का।

(खूब जोश में खम ठोक कर)

इस साल देखना मेरी वहशत के चुलबुले।
आया है धूमधाम से मौसम बहार का।

(नाचने लगता है)

(एक सिपाही दौड़ता हुआ आता है)

सिपाही—हुज़ूर, दुश्मनों ने परे के परे साफ़ कर दिए। हमारी फ़ौजें हार कर भाग रही हैं।

नायब—ऐं ? यह क्या बदकलाम ज़बान पर लाया। (मुसाहिबों से) क्या यह मुमकिन है ?

कमरुद्दीन—हुज़ूर कतई ना मुमकिन।

नायब—(एक कश पेचवान का खींचकर) वही तो मैंने कहा (सिपाही से) ख़ैर तुम जाओ।

(सिपाही जाता है—दूसरा सिपाही घबराया आता है)

सिपाही—हुज़ूर, ग़ज़ब हो गया, दुश्मन की फ़तह हो गई। वे इधर ही बढ़े आ रहे हैं। भागिये हुज़ूर, जान बचाइये।

(दोनों मुसाहिब घबराकर उठ खड़े होते हैं। शोर गुल बढ़ता है। बहुत से सवार नंगी तलवारें लिये सब को घेर लेते हैं)

नायब—(घबरा कर) क्यों पीरबख्श, सम्हालिये ज़रा, ये बेअदब गधे सर पर ही चढ़े चले आ रहे हैं। लाओ हमारी बन्दूक़, तमंचा, तलवार।

पीरबख्श—हुज़ूर, वक़्त पर हमें आज़माइए, पर यह मौका तो बेढब है। (भागता है)

नायब—मियाँ कमरुद्दीन, दाग़ो गोली धर के, उड़ा दो सब को, भून डालो क्यों? बन्दूक लो बन्दूक।

कुमार भीमसिंह—पकड़ लो, गिरफ्तार कर लो, जो लड़े उसके दो टूक कर दो।

नायब—किस को? क्या हमको? हम नायब सिपहसालार इक्कातावरवाँ जंग बहादुर हैं।

कमरुद्दीन—(अकड़कर) समझे कि नहीं। ऐरे ग़ैरे नत्थू ख़ैरे नहीं।

भीमसिंह—बाँध लो, मुश्कें कस लो, छावनी लूट लो और बाद में आग लगा दो।

नायब—व खुदा, अजब जाँगलू हो, तमीज छू नहीं गई। कहते हैं दूर ही रहना। मियाँ कमरुद्दीन?

कमरुद्दीन—हुज़ूर, अब इन जंगलियों को कौन समझाए। अजी कहते हैं, दूर रहो, अदब से बातें करो। वरना नायब साहेब बिगड़ गये तो क़यामत बर्पा हो जायगी।

एक राजपूत सिपाही—(सिर पर धौल जमाकर) चलो ठण्डे-ठण्डे। राणाजी के सामने तुम्हारा सिर काटा जायगा।

(धक्का देते हुए ले जाते हैं)

छठा दृश्य

(स्थान—राणा राजसिंह की छावनी। राणा और चुने हुए सर्दार युद्ध मन्त्रणा कर रहे हैं)

राणा—हाँ तो अब बादशाह की दूसरी युद्ध योजना यह है कि शाहजादा आज़म चित्तौर से देवारी और उदयपुर होता हुआ पहाड़ों मे बढ़े, इसी तरह शाहज़ादा मुअ-ज्ज़म राजनगर और अकबर देसूरी से ?

गोपीनाथ राठौर—जी हाँ अन्नदाता।

राणा—बहुत ठीक। अकब्बर अब सोजत में मुकीम है ?

गोपीनाथ राठौर—जी हाँ।

राणा—वहाँ से वह एक सेना नाडोल होकर तहव्वुरखाँ की कमान में देसूरी के घाटे से मेवाड़ में भेजेगा और पहिले कुम्भलमेर पर आक्रमण करेगा।

गोपीनाथ राठौर—जी हाँ, वहीं राठौरों की सेना पड़ी हुई है।

राणा—हम आशा करते हैं तहव्वुर एक मास से पूर्व नाडोल न पहुँच सकेगा। आप तुरन्त कुम्भलमेर अपनी सेना सहित जाकर मोर्चा दुरुस्त कीजिए और दुर्गादास की मदद कीजिए। विक्रम सोलंकी और मोहकमसिंह शक्तावत आपके साथ रहेंगे। पर ख़बरदार रहिए, तह-व्वुर की सेना अकबर की सेना से मिलने न पावे। उसे पहिले ही रास्ते में काट फैंकना चाहिए।

गोपीनाथ राठौर—ऐसा ही होगा।

राणा—युक्ति ऐसी करनी चाहिए कि आप तीनों सेनापति मार्ग में एक दूसरे के नजदीक ही छिप रहे। हाँ, विक्रमसिंहजी के पास २ हज़ार सवार हैं ?

विक्रमसिंहजी—जी हाँ।

राणा—बहुत ठीक, आप पहाड़ पर न चढ़ सकेंगे। आप सब से पीछे रहें और कहीं समथल भूमि पर जंगल में छिप रहे। धूर्त मुग़ल धरती सूँघते बढ़ेंगे। उन्हें हमारा भय छाया है। सम्भव है आपको पा जायँ तो आप नाम मात्र को लड़कर पीछे हट जाइए। जब शत्रु आगे बढ़ जाय, तो उसकी पीठ तोड़ने को तैयार रहिए।

विक्रमसिंहजी—ऐसा ही होगा।

राणा—और आप गोपीचन्दजी, दर्रे के सब से संकरीले रास्ते पर दबकर बैठ जायँ। मोहकमसिंहजी बीच में छिपे रहेंगे। शत्रु से कुछ छेड़छाड़ न करेंगे। ज्योंही शत्रु दर्रे के मोर्चे पर पहुँचे आप काट शुरू कर दें। बगल से पहाड़ीबाज की तरह झपट कर मोहकमसिंह जी जनेऊआ हाथ मारेंगे और पीछे से विक्रमसिंह। दुश्मन वहीं कट मरेगा।

तीनों—ऐसा ही होगा महाराज।

राणा राजसिंह—अकबर की असफलता सुनकर लाचार बादशाह स्वयं अजमेर से चल पड़ेगा। हमें मालूम है उसके पास

फौज बहुत कम है। यहां की तमाम फौज बेतरतीबी से बिखरी हुई है। वह जल्दी और गुस्से में देश में घुसता ही जायगा। हम उसे पींजरे में फांस कर खतम कर देंगे। अब जाइए आप अपनी योजना काम में लाइए।

सब—जैसी आज्ञा।

(जाते हैं)

सातवाँ दृश्य

(स्थान—उदय सागर—बादशाह की छावनी—बीच में बादशाह का ख़ीमा है। सन्तरी पहरे पर है। बादशाह मसनद पर बैठे हैं। अमीर अगल बगल हैं।)

बादशाह—अकबर से मुझे ऐसी उम्मीद न थी। उस नामुराद ने अपना नाम डुबोया।

तहव्वुरखां—जहांपनाह, शाहज़ादा जो कुछ कर सकते थे वह उन्होंने किया। मगर उन्हे बंगाल और दक्षिण की शाही फौज की मदद नहीं मिली।

बादशाह—इसके लिये कौन ज़िम्मेदार है?

तहव्वुरखां—हुज़ूर मदद मिलना मुमकिन ही न था, राना बीच में इस चालाकी से जम कर बैठा कि लाचार शाही फौज सिकुड़ी बैठी रही। कुमार जयसिंह ने आधी रात को एकाएक फौज पर टूट कर शाहजादे की तमाम फौज को काट डाला।

बादशाह—काट डाला! शाही फौज गोया गाजर मूली थी।

तहव्वुरखां—हुज़ूर, उसे न रसद मिलती थी न कुमुक। दहशत और घबराहट से उसकी हिम्मत पश्त हो चुकी थी।

बादशाह—तो शाहज़ादा अकबर अब गुजरात की ओर गया है।

तहव्वुरखां—जी हां, जहांपनाह, उनकी तमाम फ़ौज बर्बाद हो गई है। उधर शाहजादा आज बड़ी मुसीबत में है।

बादशाह—उन पर कैसी मुसीबत आई है।

तहव्वुरखां—वे पहाड़ी इलाकों में जहां तक पहुँच चुके हैं। वहां से आगे बढ़ने का रास्ता ही नहीं है। घोड़े, ऊँट, तोपखाना आगे एक कदम भी बढ़ नहीं सकता। वहां न रसद है न पानी, न दुश्मन, जिनसे लड़ा जाय। शाहजादा ने कुछ पैदल और चुने हुए सवार लेकर घाटियो के रास्ते भीतर घुसने की कोशिश की थी मगर ज्योंही घाटियों मे घुसे ऊपर से राणा की छिपी हुई फौज बड़े-बड़े पत्थर बर्साकर फौज की चटनी बना देती है। उनकी हालत ऐसी ही है जैसे कोई कुत्ता बन्द बावर्चीखाने का दर्वाजा भड़भड़ा कर फिर वापस लौट आता है भीतर नहीं घुस पाता। उधर मौज्ज़मशाह कांकरोली मे अटके पड़े हैं।

बादशाह—किस लिए ?

तहव्वुरखॉं—पहले तो उनकी फौजों को आगे बढ़ने की राह ही नहीं है। दूसरे, वह रास्ता बनाकर आगे बढ़े भी तो एक तो यह बहुत ही मुश्किल काम है। दूसरे, उन्हे बड़ा भारी एक खतरा है।

बादशाह—खतरा क्या है ?

तहव्वुरखॉं—यह, कि अगर पीछे से राजपूतों ने उनकी रसद का रास्ता रोक दिया तो कैसी बीतेगी ? राणा ने इस चालाकी और होशियारी से अपने पड़ाव डाले हुए हैं

कि बंगाल और दक्खिन की शाही फौजें भीगे बन्दर की तरह सिकुड़ कर बैठी रहीं और मुलतान की फ़ौज नेश्तनाबूद हो गई। कुछ भी मदद न मिल सकी। अब शाहनशाह जैसा मुनासिब समझें।

बादशाह—तुम अभी अपनी फौज के साथ कूँच करके अकबर को वापस लाकर चित्तौर में छावनी डालो। हम ख़ुद इस बार मुल्क के भीतरी हिस्से में घुसेंगे और देखेंगे कि राना में कितना ज़ोर है।

तहव्वुरखाँ—जो हुक्म बन्दा नेवाज़।

(जाता है)

आठवाँ दृश्य

(स्थान—मुग़लों का पड़ाव । शाहज़ादा अकबर और तहव्वुरख़ाँ । समय—प्रातःकाल)

तहव्वुरख़ाँ—शाहज़ादा, अब कहिए क्या किया जाय ।

अकबर—मेरा ख़याल है—कुछ भी नहीं किया जा सकता । हम लोग पूरी तौर पर हार गये हैं और हमारी फ़ौज बिलकुल बर्बाद हो गई है ।

तहव्वुरख़ाँ—राजपूतों की जवाँमर्दी, बहादुरी और मुस्तैदी की जितनी तारीफ़ की जाय थोड़ी है । मैं एक बात सोचता हूँ ।

अकबर—कौनसी बात ?

तहव्वुरख़ाँ—मैं सोचता हूँ कि अगर यह बहादुर कौम हमारी दुश्मन न होकर दोस्त होती । हम इनकी मदद हासिल कर सकते ।

अकबर—अगर मुझे इसकी मदद मिले तो सारी दुनियाँ में अपना सिक्का चला दूँ ।

तहव्वुरख़ाँ—तब क्यों नहीं आप एक काम करते ।

अकबर—कौनसा काम ?

तहव्वुरख़ाँ—बहुत ही आसान काम है, (कुछ रुककर) आप बादशाह होना चाहते हैं ?

अकबर—(अकबका कर) बादशाह ! ऐं ! यह किस तरह मुमकिन है ।

तहव्वुरखाँ—छिपाने की क्या ज़रूरत है शाहज़ादा ! यहाँ सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। कहिए आप चाहते हैं या नहीं ?

अकबर—चाहता तो हूँ—फिर ?

तहव्वुरखाँ—फिर उसके लिये कोशिश कीजिए । बादशाहत अपने आप तो आपको मिल नहीं सकती। उसके लिये दौड़ धूप करनी होगी।

अकबर—यह काम बहुत मुश्किल है तहव्वुरखाँ !

तहव्वुरखाँ—बहादुर लोग ही मुश्किल आसान किया करते हैं, मगर मुझे तो बहुत आसान दीख रहा है।

अकबर—आसान दीख रहा है, कैसे ?

तहव्वुरखाँ—अगर आप राजपूतों को अपनी मुट्ठी में कर लें। इनकी मदद से आप बादशाह हो सकते हैं। आलमगीर ने इन राजपूतों को नाराज़ करके मुग़ल सल्तनत की जड़ें हिला दी हैं। मुग़ल तख़्त का पाया राजपूतों के कन्धे पर था—शाहेजहाँ, अकबर और जहाँगीर ने यह बात समझी थी। मगर अफसोस, बादशाह आलमगीर न समझ सके। अब भी वक़्त है, आप समझिए। आप राजपूतों से चुपचाप सुलह कर लीजिए। (देख कर) वह शाहज़ादा आज़म आ रहे हैं।

तहव्वुरखाँ—बन्दगी शाहज़ादा !

आज़म—(परवाह न करके अकबर से) अब्बाजान ने कैफ़ियत तलब की है।

अकबर—कैसी कैफ़ियत ?

आज़म—वे तुम पर ख़ूब नाराज़ हैं।

अकबर—क्यों ? किस लिये ?

आज़म—तुम लड़ाई में हार गये।

अकबर—और तुम दिलावर ख़ाँ, और ख़ुद बादशाह सलामत ?

आज़म—हमने लड़कर शिकस्त खाई है।

अकबर—पत्थरों से या पहाड़ों से, और तो कोई दुश्मन हमें नहीं दीखा।

आज़म—यह मैं नहीं जानता। अब्बाजान तुम से बहुत नाराज़ है।

अकबर—तो मैं क्या करूँ ?

आज़म—जो ठीक समझो। बादशाह बहुत नाराज़ हैं।

(जाता है)

अकबर—सुना तुमने तहव्वुर ! आज़म ने लड़कर शिकस्त खाई है। शर्म नहीं आती, बेगम तक क़ैद कर ली गईं। मगर समझ गया, आज़म ने मेरे खिलाफ़ अब्बा को भरा है।

तहव्वुरख़ाँ—देखा नहीं, कैसी टेढ़ी नजर से देखते थे।

अकबर—तुम राजपूतों की मदद की क्या कहते थे—कहो।

तहव्वुरख़ाँ—आप उनकी मदद ख़रीदने को राज़ी हैं ?

अकबर—ख़रीदने को ?

तहब्बुरख़ाँ—नहीं तो क्या, आप नहीं तो आज़म, मुअज़्ज़म कोई न कोई तो ख़रीदेहीगा।

अकबर—(उतावली से) यह न होने पावेगा। मैं यह मदद ख़रीदूँगा।

तहब्बुरख़ाँ—चाहे जिस कीमत पर ?

अकबर—चाहे भी जिस कीमत पर। तुम राजपूतो से बातें करो।

तहब्बुरख़ाँ—मैं बात कर चुका हूँ शाहज़ादा! मगर एक अर्ज़ है।

अकबर—कैसी अर्ज़ ?

तहब्बुरख़ाँ—आप बादशाह होंगे तो—बन्दा वजीरे आज़म होगा।

अकबर—मैं मंजूर करता हूँ।

तहब्बुरख़ाँ—तो अब आप आराम करें। मैं सब ठीक ठाक कर लूँगा।

(जाता है। पर्दा बदलता है।)

नवाँ दृश्य

(स्थान—राणा की छावनी। महाराणा और उनके सावन्त बातें कर रहे हैं। सेना पड़ाव डाले पड़ी है। समय—प्रातःकाल।)

गोपीनाथ राठौर—अन्नदाता की जय हो। प्रबल प्रतापी मुग़ल बादशाह आलमगीर देवरी की घाटी में अपनी तमाम सेना सहित फँस गया है। अब क्या आज्ञा होती है ?

राणा—धन्य है आपकी वीरता और तत्परता, विस्तार से कहो कैसे क्या हुआ।

गोपीनाथ राठौर—महाराज, हमारे एक चर ने मार्गदर्शक होकर बादशाह को घाटी मे ला फँसाया। इस पर बादशाह अपनी तमाम फौज खजाना लिये मेवाड़ को जड़ मूल से रौंदने के इरादे से चला था। सब से आगे रास्ता दुरुस्त करने वाली फौज थी उनके हथियार गंडासा फावड़ा और कुदाली थे। ये लोग दरख्त काटते, गढ़े पाटते, रास्ता बनाते बढ़ रहे थे।

राणा—शाही फौज का यह हिस्सा बहुत ही मुस्तैद है।

गोपीनाथ राठौर—जी हाँ, इसके बाद तोपों की कतार थी। हमने चुपचाप इन्हे घाटी मे घुस जाने दिया।

राणा—(हँसकर) आपने बड़ी उदारता की।

गोपीनाथ राठौर—तोपो के पीछे हाथियो पर ख़ज़ाना था। जब खज़ाना घाटी मे जाने लगा, तो हमारे सेना

नायकों ने उसे लूट लेना चाहा। परन्तु मैंने उन्हे रोक-कर कहा अभी इसे घाटी में जाने दो पीछे हमारे हाथ ही आ रहेगा।

राणा—बिल्कुल ठीक किया।

गोपीनाथ राठौर—उसके पीछे ऊँटों और छकड़ों पर लदा हुआ दफ़्तरखाना था फिर ऊँटों पर लदी गंगाजल की कतारें थीं। पीछे रसद, आटा, दाल, घी और पखेरू चौपाए और कच्ची पक्की खाने पीने की चीजें थीं। बाद में तोपखाना और उसके पीछे अनगिनत घुड़ सवार मुग़ल। यह शाही फौज का पहला दस्ता था। इसे हमने चुपचाप घाटी मे चला जाने दिया।

राणा—इसके बाद ?

गोपीनाथ राठौर—इसके बाद फौज का दूसरा हिस्सा था जिसमे ख़ुद बादशाह सलामत थे। उनके आगे असंख्य ऊँटों पर दहकते अंगारो पर सुगन्ध द्रव्य जल रहे थे। जिससे कोसो तक पृथ्वी आकाश सुगन्धित हो रही थी। इसके बाद बादशाही ख़ास अहदी फौजदामी घोड़ों पर सवार थे। जिनके बीचों बीच बादशाह एक बहुमूल्य घोड़े पर सवार चल रहे थे। ऊपर कीमती मोतियों का छत्र था। बादशाह के पीछे शाही हरम बड़े-बड़े हाथियो पर थीं, जिनकी सुनहरी कलगियाँ धूप में चमक रही थी। इनके पीछे बांदी और लौंडियाँ

का अखाड़ा था जो सिपाहियाना ठाठ से घोड़ों पर सवार थीं। इसके पीछे गोलंदाज फौज थी। इस हिस्से को भी हमने चुपचाप घाटी में चला जाने दिया।

राणा—बहुत खूब !

गोपीनाथ राठौर—अब फौज का तीसरा हिस्सा आया। इसमें अनगिनत पैदल फ़ौज थी। और उसके पीछे लौंडी, मोटिए-मजदूर, रंडी, भडुए, मामूली लोग, घोड़े, खच्चर, डोली, कहार, डेरे, तम्बू थे। महाराज, इस प्रकार बरसाती नदी की तरह उमड़ती हुई यह सेना घाटी में घुस गई। हम चुप-चाप देखते रहे।

राणा—इसके बाद ?

गोपीनाथ राठौर—महाराज, यही वह राह थी जिसके रास्ते अकबर गया था। बादशाह की योजना यह थी कि झटपट शाहजादा अकबर की फौज से मिल जाय और बीच में कुमार जयसिंह की सेना मिले तो उसे कुचल डालें। फिर दोनों फौजें मिलकर उदयपुर में घुस पड़ें और राज्य को तहस-नहस कर डाले। पर जब उसकी नज़र घाटी के बगल की पहाड़ियों पर चढ़ी राजपूत सेना पर पड़ी तो उसके होश उड़ गए। वह तुरन्त समझ गया कि बगल में दुश्मन को छोड़ कर आगे बढ़ना बड़े खतरे का काम है। वह अभागा अब पलट कर लड़ भी नहीं सकता था। क्योंकि उस तंग दर्रे में

फ़ौज को पलट कर युद्ध के लिए तैयार करना सम्भव ही न था। न उतना वक्त ही था। उसे भय था कि ज्योंही फौज को घुमाया जायगा राजपूतों की सेना उस पर टूट पड़ेगी और आनन-फानन उसकी फौज के दो टुकड़े हो जावेगे और तब एक हिस्से को बड़ी ही आसानी से काट डाला जायगा।

राणा—उसका यह सोचना विलकुल ठीक था। इसके वाद क्या हुआ ?

गोपीनाथ राठौर—सामने जयसिह की सेना का भय था। आगे बढ़ना सम्भव न था। पीछे रसद लुटने का डर था। लौटने का भी कोई उपाय न था। वादशाह सेना की गति रोक कर विमूढ़ हो वैठा।

राणा—विमूढ़ होना ही था।

गोपीनाथ राठौर—निरुपाय उसने हमारे भेदिये की शरण ली और उसे उदयपुर का नया मार्ग खोजने को कहा। वह बादशाह को उसी सॅकरीले दर्रे मे घुसा ले गया जहॉ हमारी तमाम मोर्चे-बन्दी तैयार थी, वादशाह ने सेना को लौटने का हुक्म दिया, पर उसका सिलसिला उल्टा हो गया। सेना का पिछला हिस्सा पहले दर्रे मे घुसा।

राणा—(हँसकर) यह बिना मौत मरना हुआ।

गोपीनाथ राठौर—महाराज! बादशाह ने हुक्म दिया कि तम्बू और

फालतू चीज़ें उदयसागर के रास्ते जायँ। वह सेनापति तक़ख़ाँ को आगे करके, पैदल सिपाहियों और तोपखाने को लेकर दर्रे मे घुस पड़ा। उसके घुसते ही हम चीते की भाँति छलाँग मार कर उस पर टूट पड़े और क्षण भर में फ़ौज के दो टुकड़े हो गये। उनमें का एक टुकड़ा तो बादशाह के साथ दर्रे मे घुस गया दूसरा हमने सामने होकर काट डाला। यह वह भाग था जहाँ बेगमात थीं। वह कुहराम मचा कि जिसका नाम। अहदी जो बेगमो की रक्षा के लिए तैनात थे कोई हथियार न चला सके। सब बेगमात, सारा खजाना और पूरी रसद हमारे कब्जे में आगई। बादशाह दर्रे मे घिर गया। दर्रे के उस पार कुमार जयसिंह की चौकी है। इस पार विक्रमसिंह का थाना है। पहाड़ की चोटियो पर ५० हज़ार भील, भारी-भारी पत्थरो को इकट्ठा किये तीर-कमान लिये श्रीमानों की आज्ञा की प्रतीक्षा मे हैं। आलमगीर भूखा, प्यासा असहाय दर्रे मे कैद है।

राणा—वाह, यह असाध्य-साधन हुआ।

गोपीनाथ राठौर—(हाथ जोड़कर) महाराज, अब दो बातें विचारणीय हैं। पहिली बात बेगमात के संबंध में है। उनका क्या किया जाय।

राणा—उन्हे आदरपूर्वक अभी महलों में भेज दिया जाय और महारानी चारुमती को उनकी पहुनाई करने दी जाय। इसके लिए हम अलग पत्र महाराणी को लिखेंगे। खाद्य सामग्री जो अपने काम की न हो, दुसाध और डोमो को लुटा दी जाय और लूटा हुआ खजाना दीवान जी के सुपुर्द कर दिया जाय।

गोपीनाथ राठौर—जो आज्ञा, ऐसा ही होगा। (जाता है)

दसवाँ दृश्य

(स्थान—अरावली का तंग दर्रा। बादशाही फौज बेतरतीबी से परेशान हो धीरे धीरे बढ़ रही है। बादशाह एक घोड़े पर सवार है। कुछ सर्दार परेशान इधर उधर चल रहे हैं। समय—सन्ध्या काल)

अलीगौहर—हुजूर, सूरज डूब गया। दर्रे में खौफनाक अँधेरा बढ़ रहा है हमारे पास रोशनी का कुछ भी बन्दोबस्त नहीं है। आगे बढ़ना मुश्किल है।

बादशाह—इस खौफनाक दर्रे के दूसरे मुहाने का पता लगा?

अलीगौहर—ठीक ठीक नहीं, क्योंकि वहाँ तक पहुँचने का रास्ता नहीं है। प्यादे और सवार ठसाठस भरे हैं। मगर मालूम होता है मुहाना कटे दरख्तों और पत्थरों से बन्द कर दिया गया है और उधर जयसिंह की फौज लड़ने को मुस्तैद खड़ी है। उधर एक तो बाहर निकलने की गुंजाइश ही नहीं, क्योंकि रास्ता साफ करने वाली फौज हम से कट कर पीछे पड़ गई है। फिर निकलने पर एक भी आदमी जिन्दा न बचेगा। पहाड़ी पर चींटियों की मानिन्द भील फिर रहे हैं। ज्योंही हमने आगे क़दम बढ़ाया कि भारी-भारी पत्थर और तीर हमारा भुरता निकाल देंगे।

बादशाह—यहाँ रात काटना भी मौत को गले लगाना है। मगर मजबूरी है। यहीं पड़ाव डाला जाय?

अलीगौहर—हुजूर, डेरा तम्बू तो सब लुट गये। होते तो गाड़ने की यहाँ जगह नहीं। बस यही होगा कि जो जहाँ है खड़ा रहे! हुजूर, इस पत्थर की चट्टान पर आराम करें।

बादशाह—मगर घोड़ो और सिपाहियो की रसद का क्या होगा?

अलीगौहर—हुजूर, इस दर्रे मे न एक बूँद पानी न तिनका व घास। महज पत्थरों के छोटे बड़े ढोके हैं। सिपाही चाहे तो उन्हे पेट से बांध कर रात काट सकते हैं।

(एक प्यादा कठिनाई से आता है)

प्यादा—खुदावन्द, दुश्मनो ने बेगमात, खज़ाना, तोशाखाना और रसद लूट ली है। और आधी फौज जो दर्रे से बाहर रह गई थी काट फैंकी। अब दुश्मन मुस्तैदी से दर्रे का मुंह रोके बैठा है। वहाँ उसने हमसे ही छीना हुआ तोपखाना लगा रखा है।

बादशाह—(माथा पीट कर) या अल्लाह, आज तूने आलमगीर को यह दिन दिखाया। आज जीता बचा तो समझूंगा।

अलीगौहर—जहाँपनाह, यहाँ से जीते निकलने की कोई तरकीब नज़र नहीं आ रही है।

बादशाह—(गुस्से से होंठ चबा कर) जैसी ख़ुदा की मर्जी, फिलहाल जैसे मुमकिन हो यह रात काटी जायगी। जो इन्तज़ाम मुमकिन है करो। मैं ज़रा नमाज़ पढ़ूंगा।

(घोड़े से उतर कर नमाज़ पढ़ता है)

ग्यारहवाँ दृश्य

(स्थान—राणा की छावनी। चुने हुए सर्दार और राणाजी बातें कर रहे हैं। समय—दोपहर।)

राव केसरीसिंह—श्रीमान् ! पेट की आग से जलकर मुगल शाहनशाह नरम हो गया है। उसने सुलह का पैग़ाम भेजा है।

कुमार भीमसिंह—उसकी बात का क्या विश्वास ? नहीं, इस बार उसे सर्वथा नष्ट कर दिया जाय। वह यहीं भूख प्यास से तड़प-तड़प कर मरे। मर जाने पर हम डोमो के हाथो उसे गोर दिला देंगे।

राणा—(हँसकर) इस समय यह तो बहुत आसान है कि उसे यही सुखा-सुखा कर मार डाला जाय परन्तु औरंगजेब के मरने से मुग़ल शक्ति का नाश नहीं हो जायगा। उसके बाद इसका बेटा बादशाह होगा, उसकी मातहती मे दक्षिण की विजयिनी सेना इसी पहाड़ के उस पार पड़ी हुई है। और भी उसकी दो विशाल सेनाएँ मेवाड़ के अंचल पर अभी मुकीम हैं। इन सबको क्या हम नष्ट कर सकते हैं ? उनसे हमें आज नही तो फिर कभी सुलह करनी होगी। जब सुलह करनी है तो उसके

लिए यही सबसे अच्छा अवसर है। फिर ऐसा अव-
सर हमें नहीं मिलेगा।

मन्त्री दयालशाह—अन्नदाता, और कुछ न मिले, पर यह महा
पापी तो मरे।

राणा—मुग़ल साम्राज्य को योंही नहीं उखाड़ा जा सकता। हमें
अपनी शक्ति पर भी विचार करना चाहिए।

मन्त्री दयालशाह—परन्तु महाराज, इसी बात का क्या भरोसा
है कि बादशाह सन्धि की शर्तों का पालन करेगा?
वह बड़ा ही भूँठा, बेईमान और पाजी है। ज्योंही
ख़तरे से बाहर हुआ, सन्धि को फाड़ कर फैंकेगा।

राणा—इन बातों को यों विचारने पर तो फिर सन्धि हो ही नहीं
सकती। हमे उचित है कि इस सुयोग से हम लाभ
उठा ले। हमारी शर्तें यह हैं—वह तुरन्त सेना सहित
हमारे राज्य से बाहर चला जाय, और फिर कभी
मेवाड़ पर चढ़ाई न करे। मेवाड़ में न गो-वध हो न
देव मन्दिर तोड़े जायँ। न जज़िया लिया जाय।

सब—बहुत उत्तम। वह इन बातों को स्वीकार करे तो छोड़
दिया जाय। नहीं तो वहीं मरे।

मेहता फतहसिंह—(हाथ जोड़कर) बेगमात जो कैद हैं उनका
क्या होगा?

मोहकमसिंह—वे न छोड़ी जावेगी। कोई रतनचौक मे बुहारी

लगावेंगी, कोई महारानीजी को अच्छे-अच्छे क़िस्से सुनावेंगी।

भीमसिंह—बादशाह १ करोड़ रुपया दण्ड दें तो उन्हें छोड़ा जा सकता है।

राणा—सौदा करना व्यर्थ है। बादशाह सन्धि की शर्तें स्वीकार करें, तो बेगमात छोड़ दी जावेंगी।

बारहवाँ दृश्य

(स्थान—राणा का जनाना महल। महारानी चारुमती एक गद्दी पर बैठी है। समय—प्रातःकाल। निर्मल आती है।)

निर्मल—बादशाह से राणाजी की सन्धि हो गई है। (आपकी आज्ञानुसार उदयपुरी बेगम और शाहजादी जेबुन्निसा हाज़िर हैं। आज्ञा पाऊँ तो सेवा में लाऊँ)

चारुमती—पहिले उदयपुरी बेगम को ला।

निर्मल—बहुत अच्छा! (जाती है)

चारुमती—यही है वह बादशाह की चहेती, जिसके आग्रह से बादशाह मुझसे शादी किया चाहता था। मुझे बेगम बनवाने के लिए नहीं बल्कि इस बेगम की चिलम भरवाने के लिए। देखूँ कैसी है वह। (मलिका और निर्मल आती हैं)

चारुमती—(ससम्मान खड़ी होकर) आइए इस चौकी पर बैठिए।

उदयपुरी बेगम—(घमण्ड से) तुम लोगो को मौत का डर नहीं है जो बादशाह की बेगम को गिरफ्तार किया है।

चारुमती—(मुस्कुराकर) जी नहीं, राजपूत मौत से डरते नहीं, खेलते हैं।

उदयपुरी बेगम—मगर ख़बरदार रहो तुम काफिर लोग अपनी करनी को जल्द पहुँचोगे।

चारुमती—देखा जायगा। अभी तो अपनी करनी तुम भोगो। हमारी चिलम तो भरलाओ। (चंचल से) किसी बाँदी से कह कि इस नई बाँदी को चिलम भरने का सामान दे दे।

उदयपुरी बेगम—(ऐंठकर) क्या मैं ? बादशाह की बेगम, चिलम भरूँ ? यह गुस्ताखी। ख़ुदा की कसम मैं इसे बर्दाश्त नहीं कर सकती।

चारुमती—बादशाह की बेगम जब थीं तब थीं अब मेरी बाँदी हो, चटपट चिलम भरो।

उदयपुरी बेगम—तुम्हारा इतना मक़दूर·····

चारुमती—चुप, अदब से बात करो। आज तुम हमारी चिलम भरो कल बादशाह आलमगीर राणा का उगालदान उठावेगा। (निर्मल से) इस बाँदी को लेजा।

निर्मल—उठो, वह चिलम, तमाखू और आग है।

उदयपुरी बेगम—तुम सब कम्बख़्तों को सजा मिलेगी। मैं उदय-पुर का नामोनिशान मिटा दूँगी।

चारुमती—मैं चाहती थी तुम्हारे साथ भलमंसाहत से पेश आऊँ, मगर तुम्हारे इस ग़ुरूर से मेरी कोमल वृत्तियाँ नष्ट हो गईं। महाराणा ने बादशाह को जीता छोड़ दिया और तुम सब को भी जाने का हुक्म दिया उसका अहसान तो न मानोगी उल्टी जबान चलाओगी। जानती नहीं बादशाह की नाक पर लात मारने वाली

राजपूत लड़की से वास्ता है। जाओ बादशाह से कह देना इस बार मैं सिर्फ तस्वीर पर ही लात मार कर न रह जाऊँगी। जाओ तमाखू भरो और चली जाओ।

उदयपुरी बेगम—(रो कर) मैं तमाखू भरना नहीं जानती।

चारुमती—(निर्मल से) किसी बाँदी से कह कि इन्हें तमाखू भरना सिखा दे।

(दो तीन बाँदी निर्मल के इशारे से आती हैं)

बाँदी—चलो। उठाओ चिलम।

उदयपुरी बेगम—(तकदीर पर हाथ धर कर) हाय किस्मत।

(तमाखू भरती है)

बाँदी—जाओ अब बेगम! आलमगीर से तमाम हाल कह देना।

(बेगम चुपचाप जाती है)

चारुमती—(निर्मल से) ला अब शाहज़ादी को।

(निर्मल जाती है)

चारुमती—इस औरत की बहुत तारीफ सुनी है। सुना है रंगमहल में इसी की तूती बोलती है।

(शाहज़ादी आती है)

चारुमती—(उठकर मखमली कुर्सी की ओर इशारा करके) बैठिये शाहज़ादी!

ज़ेबुन्निसा—(बैठ कर) शुक्रिया, आप भी तशरीफ रखिये, महारानी!

चारुमती—(बैठकर) शाहज़ादी को बहुत तकलीफ हुई होगी। यहाँ न दिल्ली के रंगमहल के सामान; न सुविधायें।

शाहज़ादी—आप एक कैदी की इस कदर ख़ातिर करती हैं महा-रानी ! जहाँ आप हैं वहाँ क्या नहीं है।

चारुमती—आप कैदी नहीं हैं शाहज़ादी हैं। कहिये, मैं आपकी क्या सेवा कर सकती हूँ।

शाहज़ादी—आपकी शराफत मैं नहीं भूलूंगी। कहिए आपकी कुछ ख़िदमत भी बजा ला सकती हूँ।

चारुमती—बहुत कुछ। यदि आप शहनशाह को यह समझा दें कि शहनशाह अपने मुल्क का मा-बाप होता है और उनकी रियाया उनकी औलाद। चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान—उन्हे एक ही नजर से देखना उनका धर्म है।

शाहज़ादी—महारानी, सल्तनत की पेचीदगी और उलझनें बादशाहों से बहुत से ऐसे काम करा देती हैं जिन्हें सब लोग नहीं समझ पाते। ताहम मैं आपके ख़याल-लात को दाद देती हूँ।

चारुमती—(निर्मल से) शाहज़ादी को इत्र-पान दे।

(इत्र-पान देकर बिदा करती है।)

(पर्दा गिरता है)